RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 56 अंक : 06 कुल पृष्ठ : 36 4 जून, 2019

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

हरि सिंहजी गोहिल

सद्य समर्पण कर समाज हित, आखी अमर रहियो आल।
राजनीति रो रखत रायबी, गोहिल हरिसिंह इण गाळ।।
राजस्थानी सौराष्ट्री रज, मिलसी बांधव शिविर मंझार।
चर्चा परिचर्चा जद चलसी, बणसी थांरो बापु आधार।।
याद आवसी सदा आपरा, आदर संग उद्भट उद्बोध।
क्यों ही करो, कठै ही रहवो, जुड़्या रहो जड़ सूं उण पोध।।
निर्णायक नीति निर्धारक, जद कद भेळा जुड़सी साथ।
गोहिल थांरी याद घणेरी, सुमरण कर नमसी नव माथ।।

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान
फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़
आजाद सिंह राठौड़
सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड
हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 जून, 2019

वर्ष : 56 अंक-06

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
❍ पू. हरिसिंहजी गोहिल : एक विरल व्यक्तित्व	✍ श्री अजीतसिंह धोलेरा	08
❍ स्मरणांजलि	✍ श्री अजीतसिंह धोलेरा	11
❍ वीर शिरोमणि हिन्दुआँ सूर्य महाराणा प्रताप	✍ श्री गोपालसिंह राठौड़	12
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	14
❍ साधना की प्रतिक्रियाएँ	✍ स्वामी यतीश्वरानन्द	17
❍ शक्ति तत्त्व और पूजा पद्धति	✍ स्वामी सारदानन्द	21
❍ विवाहित स्त्रियों के कर्तव्य	✍ स्व. जयदयाल जी गोयन्दका	25
❍ विचार-सरिता (चतुर्चत्वारिंशत लहरी)	✍ श्री विचारक	28
❍ जुझार पृथ्वीराज 'निरवाण'	✍ स्व. रणधीरसिंह	31
❍ प्रतिष्ठा परिवार की?	✍ श्री पेपसिंह धीरावत	32
❍ अपनी बात	✍	33

समाचार संक्षेप

आतंकवाद :

भारत अनेक वर्षों से आतंकवाद से पीड़ित है। केवल कश्मीर में ही नहीं, देश के अनेक हिस्सों में आतंकी गतिविधियाँ देश ने भोगी है। जयपुर में हुई आतंकी गतिविधि की तो अभी-अभी दशाब्दी मनाई गई है। आतंकियों ने संसद तक पहुँचने में भी सफलता पाई थी। भारत की ओर से आतंकी संगठनों पर प्रतिबंध लगाने के प्रयास भी किए गये हैं लेकिन अब तक सफलता नहीं मिली थी। अब जैश-ए-मुहम्मद के सरगना मसूद अजहर को अंतर्राष्ट्रीय आतंकवादी घोषित किया जाना, इस विषय में एक बड़ी कूटनीतिक सफलता है। पुलवामा में हुए हमले का जिम्मेवार यही संगठन था। इसके पूर्व सेना के 15 कोर मुख्यालय, संसद, वायुसेना स्टेशन पठानकोट पर भी इसी संगठन ने बड़े हमले किए थे।

भारत मसूद अजहर पर पाबन्दी लगाए जाने का प्रयास तो लम्बे समय से करता रहा है पर चीन के अड़ियल रवैये के कारण अब तक उसे सफलता नहीं मिली थी। भारत के प्रयासों से धीरे-धीरे विश्व के बड़े देश अमेरिका, फ्रांस, रूस, ब्रिटेन और अनेक राष्टों द्वारा मसूद अजहर पर पाबन्दी लगाए जाने के पक्ष में आ जाने से चीन को भी मजबूरन इस माँग के पक्ष में आना पड़ा। चीन की सहमति बनाने के लिये भारत सरकार ने प्रयास जारी रखे और चीन का सकारात्मक रुख बनाने में भारत सरकार सफल रही।

इस कूटनीतिक सफलता से ही खुश होकर बैठने से कुछ होने वाला नहीं है, क्योंकि पाकिस्तान का रुख हम अनेक वर्षों से देखते आ रहे हैं। मसूद अजहर पर पाबन्दी का नाटक वह अवश्य करता रहेगा परन्तु विश्वसनीय बिल्कुल नहीं है। ऐसे आतंकियों को पाकिस्तान पालता रहा है और पाकिस्तान की सेना उनको संरक्षण देती रही है। सेना इस विषय में पाकिस्तान सरकार को भी सदैव दबाव में रखती आ रही है। दुनिया को दिखाने के लिये पाकिस्तान ने एक अन्य आतंकी सरगना हाफिज सईद पर भी दिखावटी सख्ती कर रखी है। अत: आशंका यही है कि पाकिस्तानी खुफिया एजेन्सी, आईएसआई और सेना मसूद अजहर को संरक्षण देंगे।

ऐसी परिस्थिति में हमें पाकिस्तानी भुलावे में आकर निश्चिन्त नहीं हो जाना है, बल्कि ऐसे प्रयास जारी रखने हैं जिनसे वास्तव में पाकिस्तान इन आतंककियों पर सख्ती करे। पाकिस्तान आर्थिक दृष्टिकोण से संकट की स्थिति से गुजर रहा है। अमेरिका द्वारा उसको सहायता देना बन्द कर देने के बाद उसको अब अन्य देशों की ओर रुख करना होगा। सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात तथा चीन वे देश हो सकते हैं जहाँ से पाक को सहायता मिलने का भरोसा है। चीन जो सहायता देने आगे आया था, धीरे-धीरे उसने अब हाथ वापस खींचना प्रारम्भ कर दिया है। अब वह सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात की ओर झुकेगा। इसलिए भारत को इन देशों को वार्तालाप के माध्यम से इस बात के लिये सहमत करना चाहिए कि दबाव बनायें कि पाकिस्तान आतंकवाद को संरक्षण नहीं देगा। अमेरिका और भारत मिलकर इस विषय में प्रयास करें यह भी आवश्यक है।

जौहर के चित्र को हटाना :

राजस्थान के शिक्षा मंत्री पहले तो महाराणा प्रताप नहीं, अकबर को महान बताते नहीं चूके, पर चारों तरफ से दबाव आया तो अब महाराणा प्रताप के शौर्य की बात करने लगे हैं। अब वे जौहर को सती प्रथा से जोड़ रहे हैं। आठवीं कक्षा की पुस्तक में से जौहर की फोटो हटाकर दुर्ग की फोटो लगाने पर उतरे हैं। जौहर जैसी उज्ज्वल परम्परा उनको सता रही है। क्या वे यह चाहते हैं कि आतंकी लोग जब परिवार से महिलाओं को उठा ले जाने की स्थिति में हों तब महिलाओं को खुशी-खुशी उनके दुष्कर्म का खिलोना बन जाना चाहिए? या तो भारतीय संस्कृति में पतिव्रत-धर्म के महत्त्व की जानकारी का अभाव है या जाति विशेष के प्रति कुण्ठाग्रस्त होकर वे ऐसा व्यवहार कर रहे हैं।

चलता रहे मेरा संघ

(उच्च प्रशिक्षण शिविर भारतीय ग्राम्य आलोकायन आश्रम बाड़मेर में 19 मई, 2018 को संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा शिविरार्थियों हेतु उद्‌बोधित प्रभात संदेश)

हम जो आँखों से देखते हैं, कानों से सुनते हैं, समस्त इन्द्रियों के द्वारा जो अनुभव करते हैं, उससे पाते हैं कि इस जगत में बहुत विभिन्नताएँ हैं। वृक्षों के रंगों को देखें-अधिकतर वृक्ष और वनस्पति हरा रंग लिए हुए हैं। हमको सब हरा दिखता है, लेकिन इन सबके हरेपन में बहुत विभिन्नताएँ हैं। नीम के पेड़ की हरियाली एक तरह की है, पीपल के पेड़ की हरियाली दूसरी तरह की है, बबूल की हरियाली अलग है तो तुलसी की हरियाली दूसरी तरह की है। इसी प्रकार अन्य पेड़ों की हरियाली भी अलग-अलग प्रकार की है। ये विभिन्नताएँ हमारी बनाई हुई नहीं हैं, सृष्टि के सृजनहार ने बनाई है। पशुओं की, पक्षियों की एक ही जाति में भी विभिन्नताएँ हैं। मानव जीवन में स्त्री-पुरुष का भेद तो स्पष्ट है ही, कद-काठी में भी अन्तर है, स्वभाव में अन्तर है। यह सब भी हमने नहीं बनाया, जिसने हमको बनाया है, ये विभिन्नताएँ भी उसी ने बनाई है।

लोग समानता की बात करते हैं। व्यवहार में समानता बनाई जा सकती है लेकिन क्षमताओं की समानता नहीं हो सकती। हम सुनते हैं वैज्ञानिकों के द्वारा सिद्ध की गई बातों को कि सब मनुष्यों के खून का रंग लाल है। मनुष्यों का ही क्यों? पशुओं का, पक्षियों का, जो चल फिर सकते हैं उन सबके खून का रंग भी लाल है पर उनकी क्षमताएँ, उनका स्वभाव तो भिन्न-भिन्न है, इनको एक नहीं किया जा सकता। यह एक सर्वविदित सत्य है, सनातन सत्य है।

हमारी सबकी क्षमताएँ भी अलग-अलग हैं। एक ही माता-पिता की संतानों में भी कद-काठी का अन्तर रह जाता है, उनके स्वभाव में अन्तर रह जाता है। भगवान ने ये विभिन्नताएँ बनाई हैं और संसार का सौंदर्य भी यही है। सारी चीजें एक जैसी होती तो कोई सुन्दरता नहीं रहती। इसी तरह से संसार में सब चीजें उपलब्ध हैं, लेकिन उनका संग्रहण सबके पास बराबर नहीं है और इनको सबके पास एक जितना, एक जैसा, किया नहीं जा सकता। मनुष्य की मनुष्यता इसी में है, इन्सानियत इसी में है कि हमारे आस-पास चाहे नर-नारी हों, चाहे पशु-पक्षी हों, उन सबमें समानता तो हम नहीं ला सकते लेकिन हमारे पास जो भी भगवान ने दिया है, वह बाँटकर हम उसका सदुपयोग करें। कुछ लोग कुछ प्राचीन परम्पराएँ अब भी निभाते हैं। चिड़ियों को, मोरों को, पक्षियों को दाना डालते हैं, गाय को, कुत्ते को रोटी देते हैं जो भगवान ने हमको दिया है।

अन्न को हमने पैदा नहीं किया, भगवान ने ही दिया है। बरसात होती है और हम खेत में कुछ दाने डाल देते हैं। जितना हमने डाला उससे अनेक गुणा भगवान हमको देता है। उन सब में सबका हिस्सा है। यह हमारी सोच है, इन्सानियत है। दूसरे प्राणी, जड़-चेतन यह काम नहीं कर सकते, यह तो हमारी ही मनुष्यता है।

यहाँ हम शिविर में आए हैं। शिविर में भी विभिन्नताएँ हैं। इन विभिन्नताओं में हम एकता का दर्शन करना चाहते हैं। स्थूल रूप से एक जैसा गणवेश पहनकर, एक ही प्रकार का आचरण करके, जो मन में आए वैसा न करके जैसा कहा गया है वैसा करके; आप्त पुरुषों द्वारा, महापुरुषों द्वारा जो रास्ता हमारे लिये बना दिया गया है, जीवन व्यवहार के लिये उसका पालन कर रहे हैं। विभिन्नताओं में भी अभिन्नता देखते हैं। शिविर में जो सामान्य आवश्यकताएँ हमारी होती हैं-आवास की, भोजन की, जल की, वह जितनी है, उतनी है, सभी भगवान की दी हुई है और सभी के लिये समान रूप से उपलब्ध है। भगवान ने जो भी दिया है, मनुष्य अपनी

बुद्धि और विवेक को काम में लेकर उसका सदुपयोग करे। इसके लिये शास्त्रों ने, महापुरुषों ने नियम बनाकर निर्देशित भी किया है।

काम करते-करते जब भोजन का समय होता है, तभी हम भोजन करते हैं। मन में आए तब भोजन करना, मन में जचे तब पानी पीना यह इन्सानियत नहीं कही जाती। इन्हीं निर्देशों के आधार पर समाजका, समूह का निर्माण हुआ और एक समाज चरित्र बना, राष्ट्र चरित्र बना। हमको प्यास लगती है, प्यास दूसरों को भी लगती है। इन्सान वह है जो स्वयं पानी पीने से पहले दूसरों को पानी पिलाए और फिर स्वयं पिये। इसी तरह भोजन कर रहे हों तो पहले दूसरों को भोजन करवाकर बाद में स्वयं भोजन करें या जैसी व्यवस्था हमको दी जाए उसका पालन करें। जिस आवास स्थान पर आपको रखा गया है, वहाँ कुछ अभाव भी हो सकता है, श्रेष्ठ मनुष्य वह है जो स्वयं कष्ट में रहकर दूसरों के कष्ट को दूर करे, उनको सुविधाएँ प्रदान करे।

शिविर में हम आते हैं तो यह अभ्यास करते हैं कि इन्सान हैं तो इन्सान-सा व्यवहार करें। इसमें हमसे कुछ भूल हो रही होगी। प्यास लगी हुई है और पानी पीने का समय मिलता है तो टूट पड़ सकते हैं सबसे पहले पानी पीने के लिये या अधिक पानी पीने के लिये। इसी तरह भोजन में भी भूल हो सकती है। इस संसार में आने के बाद हमारी प्रकृति में कुछ दोष आ जाते हैं- अधिक लेना और कम देना। यह हमारा मूल स्वभाव नहीं है, नैसर्गिक स्वभाव नहीं है। भगवान ने हमको जिस घर में, जिस माता-पिता के कुल में जन्म दिया तो उस कुल के कुछ मौलिक स्वभाव लेकर आते हैं और कुछ इस संसार में आकर यहाँ के वातावरण व संगति से प्रभावित होते हैं। उस संसार के प्रभाव से कुछ पशुता हमारे स्वभाव में आ जाती है। उस पशुता को दूर करने के लिये इन शिविरों के आयोजन की आवश्यकता है। आज शिविर का नौवां दिन है, अपेक्षा की जाती है कि आगे के दो दिनों में जो पशुता हमारे अन्दर बच गई है उसको दूर कर लेंगे। यह हमारे सामने बहुत बड़ी चुनौती है कि जो हम नौ दिन में नहीं कर पाए वह दो दिन में कैसे कर लेंगे? जो दो दिन में संकल्प-पूर्वक पशुता को दूर नहीं कर सकता, वह सौ दिन में भी नहीं कर सकता। अच्छाइयाँ हमारे स्वभाव में है, कुछ दोष भी हैं। दोष हटा दें तो शेष इन्सानियत ही रहती है।

आपको पाठ पढाया जाता है क्षात्रधर्म का। क्षात्रधर्म का जीवन त्याग से ही प्रारम्भ होता है और त्याग पर ही अन्त होता है। पू. तनसिंहजी ने हमें बताया है कि हमारे जीवन के तीन आयाम हैं। हम तक तो व्यष्टिगत जीवन जीते हैं, एक समष्टिगत जीवन जीते हैं तथा एक परमेष्टिगत जीवन जीते हैं। वही जीवन हम घर पर भी, संसार में भी और यहाँ भी जी रहे हैं। हमारा व्यक्तिगत जीवन कहीं दूसरों के लिए बाधक न बन जाए यह समष्टिगत भाव है और समष्टि की सेवा करते-करते, समाज की सेवा करते-करते, राष्ट्र की सेवा करते-करते जो कर्तव्य बोध जगता है, वह स्वकर्म और स्वधर्म कहलाता है। यह स्वकर्म जो भगवान ने हमारे लिए निश्चित किया है, उसी को हम नियत कर्म कहते हैं।

गीता में बहुत स्पष्ट बताया है कि हमारे लिए क्या करने योग्य कर्म है और क्या नहीं करना चाहिए। हम कोई करते हैं उसमें प्रारम्भ में हमें अमृत जैसा स्वाद आता है, अर्थात् अच्छा लगता है लेकिन उसका परिणाम यदि विष जैसा है, अर्थात् खराब है वह फूट देता है, अलगाव देता है तो वह निन्दनीय कर्म है और ऐसा कर्म नहीं करना चाहिए। नींद हमें अच्छी लगती है, पर असमय ली नींद पूरी व्यवस्था बिगाड़ देती है। सत, रज और तम इन तीनों ही गुणों का अलग-अलग स्वभाव है। बिना समय के सोने से तमोगुणीय प्रवृत्ति हमारे ऊपर हावी हो जाती है और तब हम इन्सानियत से गिरकर पशु रह जाते हैं।

हमारे जीवन में दिव्यता भी है, दैवीगुण भी हैं। दैवी गुणों का अर्जन करने और उन्हें दृढ़ बनाने के लिये हम यहाँ आते हैं। रज गुण ऐसा है जो स्थिर नहीं रहता। वो सत के साथ मिलकर मनुष्य को देवता बना देता है तो तम

के साथ जुड़कर मनुष्य को राक्षस बना देता है। इसलिए अपने अन्दर झांकें कि हमारा रजो गुण अर्थात् हमारी इच्छा और क्रिया सत के प्रभाव में है या तम के। आत्मावलोकन से ही हम हमारी प्रगति का आकलन कर सकते हैं। पू. तनसिंहजी ने गीता सहित अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया और उनका सार हमें संघ में दिया। हमसे भी यही अपेक्षा है कि हम अध्ययन करते रहें। अभी इसमें कमी नजर आती है। हम रोज मंत्र बोलते हैं। उच्चारण में कमी नजर आए तो दर्द होता है। दूसरे लोग जो अध्ययनशील हैं उनके विचार और उच्चारण अच्छे लगते हैं। हमारे पास अध्ययनशील लोग कम हैं, इनकी संख्या बढानी है। स्वयं ही निश्चित करें कि मुझे अध्ययनशील बनना है, अच्छी भाषा बोलना है। ऐसा नहीं करेंगे तो संस्कृति और सभ्यता का विकास कैसे होगा? इस विषय में विभिन्नताएँ हैं, एकरूपता लाने का प्रयास करें।

पूरे भारत वर्ष में अनेकों प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं। तब राष्ट्र ने तय किया कि एक राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए। लेकिन राष्ट्र यह तय नहीं कर पाया कि एक राष्ट्रीय ग्रन्थ भी होना चाहिए, जिससे प्रेरणा लें। इसीलिए ये विभिन्नताएँ बनी रहती हैं, बनी रहेंगी। हमारी परम्पराएँ हमें शिष्टाचार, सदाचार, संस्कृति बताती रहती है। इनमें एकरूपता आनी चाहिए। देश में तो अनेक भाषाएँ हैं ही, प्रदेश में भी भाषा में जगह-जगह अन्तर स्पष्ट है। इसीलिए राष्ट्रीय भाषा घोषित की गई पर राष्ट्रीय भाषा बन नहीं पाई। राष्ट्रीय पशु घोषित कर दिया, राष्ट्रीय पक्षी घोषित कर दिया लेकिन अभी तक राष्ट्रीय ग्रन्थ घोषित नहीं किया गया, इसीलिए प्रेरणा का स्रोत कुण्ठित हुआ पड़ा है। भगवान व्यास ने द्वापर में सभी शास्त्रों का संकलन किया। वेदों के मंत्र उन्होंने नहीं बनाए लेकिन उन्होंने मंत्रों का विभाजन किया। पहले तीन वेद माने जाते थे, व्यासजी ने उनको चार वेदों में विभाजन किया। वे भगवत्ता को प्राप्त महापुरुष कहे जा सकते हैं। अनेक शास्त्र लिखे, महाभारत लिखी और गीता के लिये कहा कि एक ही शास्त्र है। ***एकम् शास्त्रम् देवकी पुत्र गीतम्।*** सबसे श्रेष्ठ शास्त्र गीता है जो महाभारत का एक अंग है। और एक ही देव है, उस युग में, वे हैं वासुदेव। पू. तनसिंहजी ने गीता का गहरा अध्ययन किया और क्षत्रिय युवक संघ के लिये एक पुस्तक लिखी-'गीता और समाज सेवा'। गीता ही हमारी कार्यप्रणाली का आधार है। व्यासजी ने जो गीता के बारे में कहा, पू. तनसिंहजी ने उसे अनुभव किया। हम भी इसका अध्ययन करें।

गीता के प्रति उदासीनता हमारे बिखराव का कारण है। हमारे पशुत्व का कारण है। हमारी विकृतियों का कारण है। इसलिए गीता का अध्ययन किया जाना चाहिए। तभी क्षत्रिय युवक संघ सही प्रकार समझ में आएगा वरना अभी हम व्यक्तिश: अपना-अपना रुख संघ के प्रति बनाए हुए रहेंगे। हमको एक-सा संघ बनाना है। ऐसा संघ हमारा हो-उस हमारा में मैं छिपा हुआ है, मुझे तो ऐसा करना ही है। मेरे सामने चुनौती है, देश के सामने चुनौती है, समाज के सामने चुनौती है, उसके लिये गीता केवल हमारा ही नहीं, पूरे राष्ट्र का शास्त्र है, मानव मात्र का शास्त्र है।

जब गीता लिखी गई तब न हिन्दू धर्म था, न इसाई धर्म था, न इस्लाम धर्म था, न यहूदी धर्म था। सभी पंथों से निरपेक्ष और एक भगवत्ता प्राप्त व्यक्ति व्यास जी ने सारी बात स्पष्ट की। वे भगवत्ता प्राप्त थे पर अपने को भगवान नहीं कहा। उन्होंने उस समय भगवान कृष्ण को ही देव कहा। उसी गीता में भगवान के मुख से निकला है कि प्रकृति रूपी माता के गर्भ में, मैं अपने आपको स्थापित करता हूँ पिता के रूप में और अपने आपको ही प्रकट करता हूँ। हम प्रात:काल केशरिया ध्वज के समक्ष उसी को भगवान का प्रतीक मानकर प्रार्थना करते हैं। यह पुरुष की प्रार्थना है। प्रकृति और पुरुष मिलकर संसार बनता है। माता और पिता मिलकर संसार को जन्म देते हैं। भगवान कहते हैं कि जब मुझे सृष्टि का सृजन करना होता है तो सबसे पहले प्रकृति को बनाता

(शेष पृष्ठ 10 पर)

पू. हरिसिंहजी गोहिल : एक विरल व्यक्तित्व

- अजीतसिंह धोलेरा

(अवतरण- ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी वि.सं. 1968, दिनांक 7.6.1911 देहोत्सर्ग- 2 फरवरी सन् 1991 (आयु 80 वर्ष) गाँव-गढुला, तहसील-शिहोर, गोहिलवाड़, भावनगर, गुजरात)

हिमालय की ऊँचाई, सागर की गहराई व गंगा की पवित्रता के धनी पूज्य हरिसिंह जी बापू के लिये लिखना, बोलना तो दूर रहा, सोचना भी मुझ बौने व्यक्तित्व धारी के लिये बड़ा कठिन काम रहा है। फिर भी पूज्य बापू ने मुझे सदा अपना माना था, उस हैसियत से जब कभी आवश्यकता पड़ी बोला भी हूँ, बोलता भी हूँ, थोड़ा लिखा भी है, लिखता रहता हूँ।

इस लघु लेख में पूज्य बापू के विषय में कुछ छोटी-छोटी घटनाओं का विवरण दे कर आपके बड़प्पन का परिचय देने का दु:साहस कर रहा हूँ।

❊ राजस्थान में भूस्वमी आंदोलन चल रहा था। राजकोट स्थित श्री कच्छ, काठियावाड़, गुजरात, गरासिया (राजपूत) एसोसिएशन के कार्यालय में बैठे लोगों को इस आंदोलन के समाचार मिल रहे थे। परस्पर चर्चा हुई - ''हमारे भाई अपने हक के लिये, न्याय के लिये लड़ रहे हैं। हमें भी अपने भाइयों का सहयोग करना चाहिए।'' आंदोलन के स्वरूप, कार्य करने वाले लोगों और आंदोलन के हेतु की अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिये पू. बापू हरिसिंहजी के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल राजस्थान भेजा गया।

प्रतिनिधि मण्डल ने जयपुर में आकर देखा कि आंदोलन के अधिकांश अग्रणी जेल में हैं लेकिन आंदोलन-पूर्ण अहिंसक, व्यवस्थित व अनुशासित रूप से चल रहा है। पू. बापू ने जानकारी ली कि इसका राज क्या है? पता चला कि आंदोलन की बागडोर श्री क्षत्रिय युवक संघ के हाथों में है जो अनुशासित व संस्कारित संगठन है। संघ के बारे में कुछ जानकारी ली, पू. तनसिंहजी व पू. आयुवानसिंहजी से मिले और संस्कार सिंचन की इस प्रवृति की गुजरात के राजपूत बालकों में भी आवश्यकता जताकर संघ शिक्षण को गुजरात में लाने की प्रार्थना की। समाज के भविष्य के बारे में चिन्तनशील पू. हरिसिंहजी बापू संघ को गुजरात में ले आए।

पू. आयुवानसिंहजी संघ का परिचय देने के लिये भावनगर पधारे। समाज के एक अग्रणी ने भावनगर के राजपूत छात्रावास में संघ का कार्यक्रम रखे जाने का विरोध किया। पू. बापू को पता चला तो बिना किसी आलोचना गिला-शिकवा के गए और उन सज्जन से मिलकर उन्हें ही ले आए पू. आयुवानसिंहजी के पास। पू. आयुवानसिंहजी की संघ सम्बन्धी बात सुनकर अभिभूत हो गए और उनके सहयोग से ही गुजरात में संघ के पहले प्रशिक्षण शिविर का 12 अक्टूबर, 1957 को शुभारम्भ हुआ। संयोग नहीं कहूंगा, ईश्वर की कृपा व पू. बापू के सद्भाव के शुभ फलस्वरूप मैं उस शिविर में उपस्थित रह सका।

❊ अहमदाबाद जिले के धोलका नगर में जनसंघ का अधिवेशन था। माननीय अटल जी पधारे थे। अधिवेशन की व्यवस्था, संचालन आदि का दायित्व पूज्य बापू पर था। संयोग से मैं भी उस कार्यक्रम में उपस्थित था। कार्यक्रम रात को एक बजे पूरा हुआ। कार्यक्रम के लिये लगाए गये शामियाने के बाहर अटल जी टहल रहे थे। बोले-'भाई' कहाँ है? जनसंघी लोग पू. बापू को 'भाई' कहकर पुकारते थे। मैंने पूछा 'क्या काम है?' ''अरे! हमको चाय कौन पिलाएगा?'' मैं दौड़कर पू. बापू के पास गया और चाय की बात बताई। पू. बापू ने कहा-''चाय के लिये बोल दिया है, चलो मैं आता हूँ।'' अर्थात् अधिवेशन की पूरी व्यवस्था संभालने वाले को पता था कि लम्बे कार्यक्रम के बाद अटल जी को चाय की आवश्यकता होगी।

❊ सौराष्ट्र के राजपूतों के संगठन श्री कच्छ, काठियावाड़, गुजरात गरासिया (राजपूत) एसोसिएशन (स्थापना 1906) के पू. बापू प्रमुख थे। उन दिनों गुजरात

में पूज्य बापू की अध्यक्षता में जनसंघ की स्थापना हो चुकी थी और पूज्य बापू राजकोट महानगर पालिका (कॉर्पोरेशन) के नगर पति थे। रात्रि विश्राम एसोसिएशन के राजकोट स्थित कार्यालय में ही करते थे। एक रात राजपूत समाज का कार्यक्रम पूरा करके रात बारह बजे एसोसिएशन के कार्यालय में रात्रि-विश्राम के लिये पधारे। मैं साथ में था। कार्यालय पहुँचते ही स्नानागार में जाकर आप कपड़े धोने लगे। मैंने पूछा-''बापू! यह क्या? इस समय कपड़े धो रहे हो?''

पू. बापू बोले-''हाँ, सुबह तक सूख जाएंगे तो पहनकर कार्यक्रमों में जा सकूंगा।''

राजकोट शहर के मेयर और सिर्फ एक जोड़ी कपड़े।

✲ राजकोट में जनसंघ का एक कार्यक्रम राजमाता विजयराजे सिंधिया की अध्यक्षता में रखा गया था। कार्यक्रम सम्पन्न होने में लगभग एक घण्टे की देरी हो गई। राजकोट से 178 कि.मी. दूर भावनगर में आयोजित ऐसे ही कार्यक्रम में उपस्थित होने के लिये पू. बापू तुरन्त राजमाता के साथ कार से रवाना हो गए। बीच राह में सड़क पर पू. बापू का गाँव गढ़ुला है। राजमाता ने बोर्ड देख लिया और पूछा-''हरिसिंहजी! यह आपके गाँव का ही नाम है न?''

पू. बापू-''हाँ मांसा।'' ''तो आप अपने घर में चाय के लिये नहीं ले जाएंगे?'' पू. बापू-''यह तो मेरा बड़ा सौभाग्य होता कि आप मेरे घर पर पधार कर घर को पवित्र करती, मगर क्षमा करें, आपका मेरे घर पर आना मेरे व्यक्तिगत गौरव व खुशी की बात है, पर वहाँ भावनगर में पाँच हजार लोगों के पाँच हजार घण्टे बहुत ज्यादा मूल्यवान हैं।'' और ड्राइवर को कार और तेज गति से चलाने को कहा, राजकोट के कार्यक्रम में समय ज्यादा जो लग गया था।

✲ पू. बापू के चार पुत्रों में तीसरे क्रम के श्री अजीतसिंह श्री क्षत्रिय युवक संघ को पूर्ण समर्पित वरिष्ठ स्वयंसेवक थे। प्रभावी गायक थे। संघ के शिविरों में गायन गाकर वातावरण बना देते थे। वाणिज्य वर्ग के स्नातक थे। किसी सरकारी नौकरी के लिये साक्षात्कार हेतु बुलावा आया। अजीतसिंह के एक मित्र ने पूज्य बापू से प्रार्थना की-''बापू! आप उस अधिकारी को फोन से कह दो न कि मेरा लड़का साक्षात्कार देने के लिये आ रहा है।''

''नहीं। बिल्कुल नहीं और अजीत को भी कहता हूँ कि वहाँ मेरा नाम न ले। उसकी योग्यता पर वह अधिकारी प्रसन्न हो जाता है तो ठीक है।'' सिफारिश नहीं की, अजीतसिंहजी की वह नौकरी नहीं लगी।

यह हमारा दुर्भाग्य रहा है कि गुजरात का वह ध्येयनिष्ठ स्वयंसेवक बहुत छोटी आयु में ही प्रभु का प्यारा हो गया।

✲ गुजरात में लगने वाले लगभग सभी क्षत्रिय युवक संघ के शिविरों में आपको समाचार मिलते ही एक दिन के लिये या कुछ घण्टों के लिये जरूर पधारते थे। प्रेरक सम्बोधन करने की हमारी प्रार्थना को स्वीकार करते आप प्रारम्भ में कहते थे-''मैं संघ कार्य कुछ करता नहीं हूँ और जो कुछ करता नहीं है, उसको बोलने का अधिकार भी नहीं है। मगर जब शिविर संचालक मुझे आज्ञा देते हैं तो एक स्वयंसेवक के रूप में मुझे बोलना ही चाहिए और यह तो आप सभी का बड़प्पन है कि मेरे जैसे एक बुड्ढे को सुनते हैं।''

बड़े लोगों का यह स्वभाव होता है कि वे दूसरों को भी बड़ा मानकर सम्मान देते हैं। पू. नारायणसिंहजी रेड़ा के संचालन में गुजरात में सात दिन का माध्यमिक प्रशिक्षण शिविर खेतों में चल रहा था। तीन दिन हो चुके थे। बापू अभी पधारे नहीं थे। एक शिविरार्थी ने कहा-''पूज्य बापू क्यों नहीं आए हैं? बापू को इस शिविर का समाचार तो है न?''

गुजरात के छोटे-बड़े शिविर और पूज्य तनसिंहजी या और कोई राजस्थान से गुजरात में पधारते थे तो पहला समाचार पू. बापू को कर दिया जाता था। पू. नारायणसिंहजी उस शिविरार्थी के प्रश्न के उत्तर में बोले--''बापू कैसे आएँ, आपने उनके लिये आवास की व्यवस्था की है?''

तुरन्त एक झौंपड़ी खड़ी कर दी गई और उसी शाम बापू का शुभागमन हुआ।

पू. नारायणसिंहजी योग की बड़ी ऊँचाई पर जा पहुँचे थे। आपका मानना सही था कि आध्यात्मिक शक्ति की जागृति के सिवाय संघ कार्य में आवश्यक गति व निखार नहीं आएँगे। चर्चा में पू. नारायणसिंहजी ने बापू से पूछा– ''संघ के प्रशिक्षण शिविरों में योग को कैसे जोड़ा जाए।''

दूसरा कोई होता तो उत्तर में एक लम्बा चौड़ा भाषण झाड़ देता। मगर ये तो बापू थे। आपने पूर्ण नम्रता के साथ कहा–''आध्यात्मिक शक्ति के मूल्य को मैं समझता हूँ। पर इस क्षेत्र में मेरा कोई गहन चिन्तन नहीं है। मगर संघ में इसकी आवश्यकता की पूर्ति के लिये मैं जरूर थोड़ा बहुत करूंगा।'' पू. बापू वैसे आध्यात्मिक पुरुष थे ही। गहरे चिन्तक थे। श्रीमद्‌भगवद् गीता पर आपने लिखा है। अपनी जबान की तरह आपका लेखन भी बहुत प्रभावशाली था। गुजरात के प्रसिद्ध साहित्यकार व चिन्तक श्री विष्णु भाई पंड्या का मानना था कि बापू यदि समाज कार्य में रत नहीं रहते और लिखते तो गुजरात को एक प्रखर साहित्यकार मिलता।

✻ पू. बापू अपनी खुद की कम, साथियों की, दूसरों की चिन्ता अधिक करते रहते थे। अपनी आवश्यकता की पूर्ति में दूसरों को थोड़ा-सा कष्ट देने में आप राजी नहीं होते थे।

एक बार अहमदाबाद में देर रात तक आप कार्यक्रमों में व्यस्त रहे थे। रातका भोजन नहीं कर सके थे। एक साथी ने नजदीक में आए अपने घर पर भोजन के लिये चलने की प्रार्थना की। उसको अनसुना करके आप अपने अन्य साथियों के साथ बातों में रमे रहे। फिर एक छोटी-सी लॉज में जाकर खाना खा लिया।

आपने उस निमंत्रक साथी से कहा–''बुरा न मानें, मगर मैं रात के ग्यारह बजे मेरी बेटी को रसोई बनाकर मुझे खिलाने का पाप नहीं कर सकता था।'' कार्यकर्ताओं की पत्नियाँ बापू की प्यारी पुत्रियाँ ही थी।

✻ अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा अधिकांश रूप में राजाओं और ठाकुरों की बनी रही है। पर हमारे लिये गौरव व खुशी की बात यह है कि उस महासभा में एक गैर राजा-ठाकुर, पूज्य हरिसिंहजी गोहिल ने सचिव का कार्य वर्षों तक किया।

।। ॐ श्री हरये नमः ।।

पृष्ठ 7 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

हूँ। वह माता का रूप है। शाम को हम माताजी की उपासना करते हैं। किसी चित्र में न जाएँ, यह प्रकृति जो दिखाई देती है, उसमें भगवान ने ही अपने आपको प्रकट किया है। तो माता कोई अलग से नहीं है, वो पिता का ही रूप है, भगवान का ही रूप है। लेकिन दो के बिना सृजन नहीं हो सकता इसीलिए दो रूप का नाम दिया।

प्रात:काल और सायंकालीन प्रार्थनाओं के बीच हमारा पूरा दिन बीतता है। यह माता और पिता की उपासना है। हम कोई भी माता-पिता के बिना नहीं हैं। स्थूल रूप में सबसे निकट हमारी प्रकृति है, वो हमारी माँ है। उसका आदर करना सीखें। पिता की आज्ञा मानना सीखें। माँ भी पिता का अनुकरण है। पुरुष का अनुकरण करती है प्रकृति। तभी संसार में सुख और समृद्धि आती है। जहाँ अकड़ आ जाती है कि माताजी की ही उपासना होनी चाहिए, भगवान की उपासना नहीं होनी चाहिए; पार्वती की उपासना होनी चाहिए, शिवजी की नहीं होनी चाहिए, ऐसी जो धारणाएँ देखते हैं, उसी को हम धारण कर लेते हैं। अधिकांशत: बच्चों के गले में सोने या चाँदी के फ्रेम लटके रहते हैं, उनमें विभिन्न प्रकार के चित्र हैं। इसी प्रकार हमारी उपासना भी विभिन्नताओं में बंट गई। विभिन्नताओं से अभिन्नता लाने के लिये गीता कहती है कि ईश्वर एक है। एक की ही उपासना की जानी चाहिए। उस एक की उपासना करने में क्षत्रिय युवक संघ की संपूर्ण साधना है। यह बात हमारे समझ में आए तब कहीं हमारा जीवन व्यवहार श्रेष्ठ बनेगा। उस श्रेष्ठता की प्राप्ति के लिये हम सदैव जाग्रत रहें, तत्पर रहें, यही संदेश क्षत्रिय युवक संघ का आज के मंगल प्रभात में है। ***जय संघशक्ति!***

पू. हरिसिंहजी बापू को

स्मरणांजलि

– *अजीतसिंह धोलेरा*

'हरि' ॐ तत्सत् बाकी सब गपशप, हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्।
'हरि' बसे जाकर बैकुण्ठ, प्रणाम हमारा दण्डवत्, हरि ॐ तत्सत्।।

हरि ने किसी से कुछ ना लिया, जीवन भर बस दिया ही दिया।
कभी की ना नफा-घाटे की, भूल से भी कोई खटपट।। हरि ॐ.....

माना सभी को महा जन सदा, बने रहे खुद अदना बन्दा।
सबकी बातें सुनी स्नेह से, की कभी ना कोई झकझक।। हरि ॐ.....

बातों में वेदोपनिषद् चर्चा में भी गीतोपदेश।
सिवाय समाज की कभी करी ना, बात एक भी निरर्थक।। हरि ॐ.....

माना समष्टि को परमेष्टि, व्यष्टि में ईश्वर देखा।
जरूरत जाने की पड़ी नहीं, मंदिर, मठ या कोई तिरथ।। हरि ॐ.....

निर्मोही, अभिमान किया नहीं, रखा नहीं कोई खोटा वट।
देख समाज को स्वधर्म विमुख, सोचा न दूंगा होने लटपट।। हरि ॐ.....

पद प्राप्ति की परवाह करी ना, परिवार की भी सुध-बुध ली ना।
भूखे, थके, सर्दी-गर्मी में, गाते रहे समाज सरगम।। हरि ॐ.....

बैठे नहीं खाली फुरसत में भी, दिन रात किया समाज चिन्तन।
समाज पीड़ा सदा बहती रही, बापू की प्रत्येक रग-रग।। हरि ॐ.....

राजकोट के थे नगर पति, विधान सभा आप से गरजी।
छोटे, बड़ों का काम चाहते, होना ही चाहिए झटपट।। हरि ॐ.....

प्रमुख एसोसिएशन के बने रहे आप आजीवन।
प्रेमामृत पाया, पिया प्रेम से विरोध-विष भी गटगट।। हरि ॐ.....

गुजरात में क्षत्रिय युवक संघ को ले आये थे आप।
संघ परिवार का इसलिए, वन्दन आपको शत्-शत्।। हरि ॐ.....

गढुला के रहे न गोहिलवाड़ के, आप बने रहे सबके।
बापू की राह पर चलूं मैं, बना रहे मेरा दृढ़-व्रत।।

हरि ॐ तत्सत् बाकी सब गपशप।
हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्।।

वीर शिरोमणि हिन्दुआँ सूर्य महाराणा प्रताप

चाहे जो समय रहा हो, जो भी शताब्दी रही हो, सोने की चिड़िया हिन्दुस्तान की शस्य-श्यामला धरती वीरों को जन्म देने की दृष्टि से हमेशा सर सब्ज रही। मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह जी की सोनगरा (चौहान वंश) राणी जयंति बाई जो पाली के राव अखेराज की पुत्री थी, की कोख से ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया संवत् 1597 (9 मई, 1540) को अरावली पहाड़ियों के पश्चिमी छोर पर स्थित कुंभलगढ़ दुर्ग में जिस बालक का जन्म हुआ था वही आगे चलकर महाराणा प्रताप के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रताप के दादा महान योद्धा महाराणा सांगा थे और दादी महाराणी कर्मवती।

महाराणा उदयसिंह के 20 रानियाँ थी और 24 पुत्र एवं 20 पुत्रियाँ थी। महाराणा प्रताप के कुल 16 रानियाँ थी जिनमें अजवांदे पंवार सबसे बड़ी राणी थी जिनकी कोख से 16 मार्च, 1559 को अमरसिंह का जन्म हुआ था शेष रानियों में आठ राठौड़, दो चौहान, दो पंवार, एक झाला, एक सौलंकी, एक हाड़ी और एक खींची थी। प्रताप के 17 पुत्र और 5 पुत्रियाँ थी।

सन् 1567 में दिल्ली के बादशाह अकबर ने चित्तौड़ पर हमला किया उस समय प्रताप 27 वर्ष के थे। चित्तौड़ से जब महाराणा उदयसिंह सपरिवार पश्चिम की पहाड़ियों के लिये रवाना हुए तो प्रताप ने साथ जाने से मना कर दिया और लड़कर शहीद होने का रास्ता चुनने को दृढ़ प्रतिज्ञ थे किन्तु राजपूत सरदारों द्वारा समझाने पर कि आपके जीवित रहने पर ही भविष्य में संघर्ष जारी रखा जा सकेगा, युवराज प्रताप चित्तौड़ छोड़ने पर तैयार हुए थे और उसके बाद जीवनकाल में कभी चित्तौड़ नहीं आ सके।

महाराणा उदयसिंह के स्वर्गवास होने के बाद 28 फरवरी, 1572 (होली के दिन) अरावली के पठारी भाग पर स्थित गोगुंदा नामक स्थान पर प्रताप का राजतिलक कराया और उन्हें मेवाड़ का महाराणा बनाया गया। जिस समय प्रताप गद्दी पर बैठे उस समय तक राजस्थान के अधिकांश राजा अकबर के साथ संधि कर चुके थे। मेवाड़ के तीन चौथाई भाग पर अकबर का कब्जा हो गया था। चित्तौड़ और मांडलगढ़ जैसे सामरिक महत्त्व के दुर्ग मुगलों के अधीन थे। राजकोष खाली था। सेना अस्त-व्यस्त थी, दो छोटे भाई अकबर की शरण में जा चुके थे। ऐसे कठिन काल में 32 वर्षीय युवा प्रताप ने अदम्य साहस और दृढ़ता का परिचय दिया। अपने परम विश्वसनीय सहयोगी और महान योद्धा ग्वालियर के राजा रामशाह तौमर एवं अन्य सरदारों से सलाह मशविरा करके भविष्य की रणनीति तैयार की और उसी अनुरूप संधि के लिये अकबर द्वारा भेजे गए दूतों का राजपूती परम्पराओं के अनुरूप स्वागत किया वहीं दूसरी ओर एक कुशल सेनानायक होने का परिचय देते हुए भविष्य में अकबर के साथ संघर्ष अवश्यंभावी मानकर युद्ध की तैयारियाँ जोर-शोर से शुरू कर दी।

18 जून, 1576 को वह घड़ी आ पहुँची जब अकबर और प्रताप दोनों की सेनाएँ मेवाड़ के हल्दीघाटी नामक स्थान पर आमने-सामने खड़ी थी। एक ओर अकबर की महत्त्वाकांक्षा थी तो दूसरी ओर प्रताप का स्वाभिमान। जहाँ अकबर के पास विशाल सैन्य बल था वहीं प्रताप के पास मातृभूमि एवं स्वतंत्रता के लिये बलिदान होने वाले देशभक्तों का दल था। इस दल में रामशाह तौमर के नेतृत्व में चंबल घाटी के राजपूतों का साथ था तो मेवाड़ के भीलों एवं मीणों के साथ ही हकीम खाँ सूर के नेतृत्व में देशभक्त मुसलमानों का दल था। अकबर की सेना का सेनापति मानसिंह था तो प्रताप की सेना के बाएँ भाग का नेतृत्व हकीम खाँ सूर के पास था। यह युद्ध अनिर्णीत समाप्त हुआ और हल्दीघाटी के इस अनिर्णीत ऐतिहासिक युद्ध से महाराणा प्रताप की वीरता और शौर्यता का डंका चारों ओर बज उठा।

युद्ध के बाद प्रताप ने बची हुई सेना को कुशलतापूर्वक कोल्यारी गाँव की पहाड़ियों में पीछे हटा लिया था और गोगुन्दा पहुँचकर मोर्चाबंदी कर ली थी। मुगलों की सेना को आगे बढ़ने से रोकने का काम प्रताप के आत्मघाती दस्ते ने संभाला था जिसका नेतृत्व चंबल

घाटी के रामशाह तौमर कर रहे थे जिनका साथ मन्ना झाला एवं उनके साथियों ने दिया। हल्दीघाटी के इस युद्ध में सबसे बड़ा बलिदान प्रताप की ओर से लड़ने वाले रामशाह तौमर का रहा था जो अपने तीन पुत्रों शालिवाहन, भवानीसिंह और प्रतापसिंह तथा एक 16 वर्षीय पौत्र बालभद्र के साथ लड़ते हुए ''रक्ततलाई'' में शहीद हुए थे जिनकी छतरियाँ आज भी उनके बलिदान की याद दिलाती है। अकबर की सेना ने 23 जून को पुन: गोगुन्दा पर आक्रमण किया तब प्रताप ने कुंभलगढ़ में मोर्चा जमाया और फिर शुरू हुआ प्रताप का छापामार युद्ध जो अनवरत 21 वर्ष चला।

महाराणा प्रताप ने युद्ध ठाना भी तो उस महान हस्ती से जिसके नाम से राजा-रजवाड़े आतंकित रहते थे। यश और विजय दोनों जिसके महलों की दासियाँ थी, ऐश्वर्य जहाँ बरसता था, वैभव जिसके राज्य में विलास करता था, उस दिल्लीपति अकबर से महाराणा ने आजीवन संघर्ष किया। कितना महान आत्मविश्वास था प्रताप का, कितना आत्मबल था, उस स्वाभिमानी का और उसी आत्मविश्वास और बल का साथ दिया था वफादार अश्वराज 'चेतक' ने। चेतक की एक अलग ही महिमा है, संसार के इतिहास में किसी पशु की समाधि बनी तो वह चेतक है। महाराणा प्रताप के कारण ही मेवाड़ को न सिर्फ देश में बल्कि विदेशों में भी ख्याति मिली है यह कहा जाए तो शायद अतिश्योक्ति नहीं होगी। प्रताप महान योद्धा थे और स्वाधीनता प्रेमी थे। प्रताप के राज में हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं था। जिसका प्रमाण है हल्दी घाटी के युद्ध में उनकी सेना के बाएँ भाग का नेतृत्व हकीमखाँ सूर नामक पठान के हाथ था। प्रताप सांप्रदायिक सद्भाव के सबसे बड़े समर्थक थे। नारियों का वे बड़ा आदर करते थे। चाहे वे किसी जाति अथवा धर्म की हो। जब सन् 1579 में राजकुमार अमरसिंह के नेतृत्व में राजपूतों की एक टुकड़ी ने अकबर के सेनापति शाहबाजखाँ के लश्कर पर हमला कर उसे लूट लिया और बेगमों को बंदी बना लाए तो प्रताप ने अमरसिंह को इस प्रकार की हरकत के लिये डांटा और चेतावनी दी ''भविष्य में कभी किसी महिला का अपमान न किया जाए चाहे वह किसी जाति या धर्म की हो।''

प्रताप के आदर्श और उनका चरित्र ही आज देशवासियों को प्रेरणा दे सकता है। सन् 1567 में अकबर द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण के साथ ही प्रताप का संघर्ष शुरू हुआ जो 19 जनवरी, 1597 को उनके स्वर्गवासी होने तक जारी रहा। प्रताप के स्वर्गवास का समाचार सुनकर अकबर की आँखों से आँसू छलक गए। उसकी आँखों से आँसू इसलिए नहीं छलके कि उसे कोई भौतिक दु:ख था अथवा दैहिक पीड़ा थी। वह रोया इसलिए था कि उसने एक जांबाज विरोधी को खो दिया था, महान देशभक्त संसार से उठ गया था। ऐसे थे महाराणा प्रताप -

किस काम का हलवा अगर, वह मैल सा बहकर मिले।
उससे भला सूखा चना, आजाद रहकर जो मिले।

स्वतंत्रता और स्वाभिमान की, आन और शान की, त्याग और बलिदान की, वीरता और शौर्यता की कितनी महान भावनाएँ उपरोक्त पंक्तियों में छिपी हुई है जिसे वीर शिरोमणि महाराजा प्रताप हमेशा गुनगुनाया करते थे। महाराणा ने मातृभूमि की रक्षा के लिये पर्वतों को ही दुर्ग, कंदराओं को ही महल, चंद्रमा को दीपक और धरती को बिछौना व आकाश को छत मानकर देश, धर्म और स्वतंत्रता के लिये अपना जीवन न्यौछावर कर दिया।

संघर्ष के इस लम्बे अंतराल में प्रताप व उनके परिवार ने जो कष्ट सहे, स्वतंत्र बने रहने के लिये जो संघर्ष किया, उसी त्याग और बलिदान ने उन्हें विश्व का अविस्मरणीय वीर पुरुष बना दिया।

प्रताप सच्चे शासक थे, कुशल सेनानायक थे। वीर सैनिक थे, संघर्ष ही उनका जीवन था, आत्मबल ही उनकी शक्ति थी। उनका त्याग और बलिदान अविस्मरणीय है। भारतीय स्वतंत्रता के सेनानी सुभाष चन्द्र बोस, चन्द्रशेखर आजाद और भगत सिंह जैसे महान क्रांतिकारियों के प्रेरणास्रोत थे प्रताप। पूजा हमेशा त्याग और बलिदान की होती है। दूसरों की सेवा करने और दूसरों के लिये मरने वालों की होती है। आपने किसी करोड़पति या अरबपति की जयंति लोगों द्वारा मनाने की बात नहीं सुनी होगी, न पढ़ी होगी। प्रताप जैसे वीरों की जयंतियाँ मनाई जाती है और मनाई जाती रहेंगी।

सौजन्य : श्री गोपालसिंह राठौड़ की पुस्तक 'हमारे गौरव'

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

साधारणतया हर व्यक्ति का एक परिवार होता है और वह परिवार उनका जन्म का परिवार होता है जिसमें माता-पिता, दादा-दादी, परदादा-परदादी, चाचा-चाची, भाई-बहिन, पुत्र-पुत्री, पोता-पोती, प्रपौत्र-प्रपौत्री आदि-आदि हैं, पर इस धरा पर एक ऐसे शख्स हुए जिनके जन्म के परिवार के अलावा एक और भी परिवार था। वो शख्स और कोई नहीं, पूज्य श्री तनसिंहजी थे जिनके इस धरा पर दो परिवार थे। एक जन्म का परिवार, तो दूसरा संघ परिवार-''श्री क्षत्रिय युवक संघ''। यह परिवार पूज्य श्री की संरचना थी, उनका ही रचा-रचाया था, उनकी ही देन थी यानी उनकी सृष्टि।

पूज्य श्री तनसिंहजी जब विधायक (एम.एल.ए.) थे, उस समय माँ सा ने पू. श्री से शिकायत की-''तुम घर के लिये रुपये बहुत कम देते हो, घर का काम कैसे चलाऊँ? क्या अब भी कष्ट उठाती रहूँ?''

''कितने रुपये चाहिए?''

''जितने तुम कमाते हो।''

''कमाता तो काफी हूँ, क्या सब आपको ही देता रहूँ? यदि सब इस परिवार को ही दे दूँ तो फिर मेरे परिवार का काम कैसे चलाऊँगा?''

''तुम्हारा परिवार............?''

''हाँ, मेरा परिवार, मेरा सांघिक परिवार। इस परिवार से सम्बन्ध बने, इस घर में जन्म लेने के कारण और उस परिवार में सम्बन्ध बने हैं हमारे त्याग, तपस्या और साधना के आधार पर। यह भी परिवार है और वह भी मेरा परिवार है।''

पूज्य श्री तनसिंहजी ने जीते जी दोनों परिवारों में अपना उत्तरदायित्व भली-भाँति निभाया। दोनों परिवारों को अपना प्यार व स्नेह दिया, उन्हें पोषित किया, उन्हें सम्बल दिया, उनका मार्गदर्शन किया।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपने जन्म के परिवार में कई उतार-चढ़ाव देखे। परिवार में घटित घटनाओं को, लोगों के व्यवहार व ढोंग को देख उन्होंने छोटी उम्र में ही बहुत कुछ अनुभव कर लिया था। अपने इस जन्म के परिवार की बात छिड़ते ही उनके पुराने घाव हरे हो जाना, बीता घटना क्रम व अतीत की हृदय में गहरे से गहरी छिपी स्मृतियाँ उनके मानस पटल पर उभर आना स्वाभाविक थी। पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा-''मेरे जीवन का एक सबसे दुखद वक्तव्य अब देना पड़ रहा है। एक नासूर हरा हो गया है। सबसे गम्भीर और ज्वलन्त प्रश्न आज खड़ा हुआ है। परिवार के उस नाजुक प्रश्न को छोड़ते हुए।'' उन्होंने बताया -

''जब मैं चार वर्ष का था, उस समय ही पिता का संरक्षण और प्रेम खो चुका था। भाग्य ने मुझे केवल पैदा किया और पालन-पोषण के लिये मुझे कठिनाइयों के हाथ बेच दिया था। उनके दिल में मेरे लिये क्या उम्मीदें थी, मैं नहीं जानता किन्तु उनके स्वर्गारोहण ने मुझे हकीकत के कैद के मैदान में इतना असहाय छोड़ा कि जीवन का वह अंश मेरे बहुत ही कड़वे और सच्चे अनुभवों का क्षेत्र बन गया। वे अपने पीछे केवल यश और नाम छोड़ गये। मैंने छोटी अवस्था में ही यह अनुभव कर लिया था कि यह संसार कितना स्वार्थी और ठगबाजी से भरा हुआ है। न वे मुझे अधिक याद हैं, और न मुझे उनकी चिन्ता ही है।''

पूज्य श्री तनसिंहजी की माँ जिन्हें हम माँ सा कहते हैं, वे निर्भीक, विवेकशील, बहादुर व साहसी माता थी जिन्होंने पूज्य श्री को माँ की ममता व आर्द्रता दी तथा पिता की कठोरता व संरक्षक का फर्ज भी उन्हीं ने निभाया था। अपनी जन्मदात्री माँ के बारे में पूज्य श्री ने बताया-

''दारिद्रय और अर्थाभाव के बीच किसी ने मुझे पाल पोष कर बड़ा किया। ममता और प्रेम मुझे मिला

जरूर, किन्तु उसमें मेरे हित की भावना ही अधिक थी। धन-दौलत लोगों के पास थी और मैं स्कूल की चार आना फीस चुकाने के लिये उन आँखों को देखा करता था, जो एक नारी की आँखें थी, जिनमें सब कुछ था, किन्तु अर्थाभाव का उत्तर नहीं था। फिर भी कठिनाईयों में साहसपूर्वक नाव को चलाए जाने का साहस मैंने देखा, जिसे देखकर मैं पुरुष होकर भी आश्चर्यचकित हूँ। मैं उसका इकलौता पुत्र था, किन्तु लगातार दो महिनों से अधिक कभी उसके पास रहा हूँ, यह मुझे याद ही नहीं है। उसका उपकार तीर्थों से भी अधिक पवित्र और समुद्र से अधिक गहरा है। मुझे आज भी मालूम नहीं, कि मेरे घर का काम कैसे चलता है, पर उसने कभी मेरे मार्ग में मुझे रोका नहीं-टोका नहीं।''

पूज्य श्री के घर की स्थिति अच्छी नहीं थी, अर्थाभाव था। इसलिए वे दारिद्रय और अभावों में पले, पढे व बड़े हुए। अर्थाभाव की वजह से उन्हें छोटी उम्र में पढते वक्त वो काम करने पड़े जो एक विद्यार्थी को नहीं करने होते हैं। माँसा ने अपने लाडले को कष्टों व अभावों से जूझते देखा, यह देख एक माँ के दिल पर क्या गुजरी, यह तो माँसा ही जाने। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया -

''उसने मुझे मजदूरी करते देखा, उसने मुझे पानी भर कर लाते देखा, उसने मुझे अनाज पीसते देखा, उसने मुझे रोटी बनाते देखा और उसने मुझे जिन्दगी की लम्बी राह पर लड़खड़ाते हुए, किन्तु चलने की उत्कट कामना से चलते देखा और वह भी जब मैं केवेल 13-14 वर्ष का ही था। फिर राजा के सदावृत में गया, सेठ के सदावृत में गया, पढते-पढते मुझे अन्तिम छोर पर पहुँचते देखा, लेकिन पता नहीं, किन आशाओं और उम्मीदों में उसने यह सब कष्ट सहा, किन अरमानों और स्वप्नों को वह मेरे भीतर देख रही थी, किस सुख की कामना थी उसकी और क्या आज भी वह पूरी हुई? मुझे धन और यश भी मिला है, किन्तु उसके फटे पुराने कपड़ों में अब भी कोई परिवर्तन नहीं आया। लानत है मेरी शिक्षा-दीक्षा को और लानत है मेरी सम्पन्नता को।''

बालक तणेराज (पूज्यश्री) में क्या बीत रही है, वे किस स्थिति से गुजर रहे हैं, पल-पल की खबर माँसा रखते थे। बालक तणेराज को कष्ट साध्य काम करते व कठिनाइयों से गुजरते देख माँ की ममता पिघलने लगी, पर पिता की कठोरता व संरक्षक का फर्ज उन्हें ही निभाना था, इसलिए माँसा ने हिम्मत रखी और उन्हें (बालक तणेराज को) अपने हृदय की पीड़ा का अहसास नहीं होने दिया। इस सम्बन्ध में माँसा ने बताया-''बालक तणेराज को कष्ट साध्य जीवन जीता देखती तब अपने दिल पर हजारों मन का पत्थर रख लेती थी, कहीं मेरी पीड़ा वह जान लेता, मेरी आँखों की आर्द्रता वह देख लेता तो शायद पसीज कर पढना ही छोड़ बैठता। मैं स्वयं ही अपने को धीरज बंधाती, दु:खी मत हो मन! जिस पुत्र के सिर पर पिता के हाथ की छाया नहीं रहती, उसे यह सब तो सहना ही होता है। जिस नारी को इतनी छोटी उम्र में काले वस्त्र पहनने पड़ जावे, उसके लिये यह दु:ख कोई बड़ा दुख नहीं हुआ करता है। मेरा धीरज ही मेरे काम आया। मैं धीरज धरती गई, दिल को कठोर रखती गई और वह पढ़ता गया।''

पूज्य श्री तनसिंहजी की प्रेरणास्रोत उनकी जन्मदात्री उनकी माँ थी। उन्हीं से वे प्रेरणा व मार्गदर्शन लेते। उन्होंने माँसा के निर्देशन में ही जीवन नैया को खेया। मार्गदर्शन व प्रेरणा के रूप में माँसा से उन्हें जो कुछ मिला, माँसा से जो कुछ उन्होंने सीखा, उन्हें अपने पास न रख के प्रसाद के रूप में समाज में बाँटते रहे, बाँटते रहे। इस सम्बन्ध में पूज्यश्री ने माँसा से कहा भी -

''माँ! तुम से जो कुछ मिला, उसका चौगुना मैंने संसार में लुटाया है। मैं अपने गरीब साथियों का सहयोगी और सखा भले ही कहलाऊँ, किन्तु वास्तव में मैं क्या हूँ, इसे तुम ही जानती हो। तुम्हारी ममता, स्नेह और तुम्हारी हितैपिता की भावना ही मैंने अपने असंख्य साथियों को दी है। उनके लिये मेरा हृदय ठीक वैसा ही है, जैसे मेरे लिये तुम्हारा हृदय। मैंने तुम्हें भौतिक सुख नहीं दिया, यह सही है, किन्तु मैंने अपने लिये भी कुछ बचाकर नहीं रखा है। जीवन में जो कुछ आया वह सब

दे दिया, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार तुमने मुझे दिया। परकाजी के पास हो ही क्या सकता है, जो अपने परिवार अथवा माँ के लिये संचित कर सके। संचय ही करना आता, तो दीपक जलता ही कैसे?''

पूर्व में बता चुके हैं कि पूज्य श्री तनसिंहजी के एक नहीं, दो परिवार थे और दोनों परिवारों में उन्होंने अपना फर्ज व जिम्मेदारी परकाजी के रूप में बखूबी निभाई। उन्हें अपने जीवन में धन-दौलत भी मिली, यश भी मिला पर उस पर उन्होंने अपना अधिकार कभी नहीं जताया। उन्होंने तो उसे समाज की धरोहर समझी और अपने को उस धरोहर का चौकीदार (रक्षक) समझकर चौकीदार का फर्ज बखूबी निभाया। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री ने माँसा से कहा-

''सम्पन्न होकर भी मैंने तुम्हारे दु:खों का अन्त नहीं किया, यह सही है, लेकिन मैं कहाँ सम्पन्न हूँ? धन की नदी में तैरता हुआ भी उसकी एक बूंद नहीं पी सकता। यश और नाम के रंग मंच पर भी चढकर उसे ग्रहण नहीं कर सकता। राजाओं के साथ बात करते हुए भी अपने आपको अपने से अधिक कुछ समझना अपने साथियों और सहयोगियों के प्रति विश्वासघात करना है। माँ! मेरे जीवन की कुछ ऐसी मजबूरियाँ हैं, जिन्हें मैं व्यक्त भी नहीं कर सकता। मेरे तर्क और सिद्धान्त भी अनोखे हैं। मेरी सहनशीलता भी विशिष्ट है। केवल तुम या और कोई जो मुझे अपना पुत्र समझकर मेरे विषय में सोचेगा, वही समझ सकेगा, कि यह सब क्यों और किसलिए है?''

जो व्यक्ति जिस स्थिति में है, उसी में बना रहे, उसी में अपने को स्वीकार करे तो वह नि:संदेह खुशनसीब है और सदा सुखी व खुश रहेगा। उसके बारे में दूसरे क्या सोचते हैं, क्या नहीं, उसे नजर-अंदाज करता रहे, अपने आप में बना रहे और अपने जीवन में मिठास भरता रहे, यही जीवन जीने का सही और वास्तविक तरीका है। ऐसे व्यक्ति जीवन जीते ही नहीं, उनका जीवन तो मुस्कराता है। इसलिए पूज्य श्री तनसिंहजी ने माँ से कहा-

''माँ! हम राजा नहीं हो सकते, हम सेठ नहीं हो सकते, हम तो अभावों में जन्में, पले और बड़े हुए हैं और अभावों में ही रहकर जीवन बसर कर सकते हैं। यह हमारे जीवन का वरदान है। इसे अभिशाप भी सोचें, तो उससे क्या बनेगा? इसलिए प्रसन्न रहने की चेष्टा करो, चाहे वह प्रसन्नता कितनी ही अस्वाभाविक लगती हो। दुनिया ऐसी तमाशबीन है, जो हमारे तड़फने का तमाशा देख सकती है, किन्तु हमारी कराह को नहीं सुन सकती, तब कराहना बेकार है। यह कायरता है। मुस्कराना बहादुरी है, और इसलिए माँ! आओ हम दोनों हमारे अभावों पर मुस्करायें, हमारी यश-लोलुपता पर मुस्करायें, हमारे भौतिक सपनों पर मुस्करायें, दुनिया के धन और हमारी गरीबी पर मुस्करायें, उन पर मुस्करायें, जो हम पर मुस्कराते हैं। उन चाँदी के टुकड़ों पर मुस्करायें, जिसके लिये दुनिया पागल हुई जा रही है, उन सुन्दर वस्त्रों पर मुस्करायें, जिन्हें पहन कर दुनिया अपनी निर्लज्जता को छिपाने का यत्न करती है। संसार के उस सुख के लिये मुस्करायें, जो किसी की समझ में नहीं आ सकता, सिवाय उनके कि जो उस पर मुस्कराते हैं। बस तुमसे केवल मैं मुस्कराहट चाहता हूँ।''

नि:सन्देह पूज्य श्री तनसिंहजी कितने सौभाग्यशाली थे जिन्होंने माँसा मोतीकँवर जी जैसी महान विभूति की कोख से जन्म लिया और माँसा ने अपनी प्रेरणा व निर्देशन में उन्हें कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया। माँसा भी कितने सौभाग्यशाली थे जिनकी कोख से पूज्य श्री तनसिंहजी जैसे महान् पुत्र ने जन्म लिया और अपनी पहचान राम, कृष्ण, महावीर व बुद्ध की तरह देश-विदेश में कायम की, बनाई।

(क्रमश:)

वह सच्चा साहसी है जो मनुष्यों पर आनेवाली भारी से भारी विपत्ति को बुद्धिमता पूर्वक सह सकता है। – **शेक्सपियर**

गतांक से आगे

साधना की प्रतिक्रियाएँ

– स्वामी यतीश्वरानन्द

आध्यात्मिक संघर्षों और प्रतिक्रियाओं का सामना कैसे करें? :

हम सभी को उतार-चढ़ाव, उत्थान-पतन से गुजरना पड़ता है। इन परिवर्तनों से हमें उच्च से उच्चतर आरोहण करते हुए गुणातीत अवस्था में परमात्मा की प्राप्ति की आवश्यकता को भली-भाँति समझ लेना चाहिए।

यदि साधना में उत्साह का अनुभव न भी होवे तो भी उसे नियमित रूप से, बिना व्यवधान के लगनपूर्वक करते जाओ। साधना को बीच में बन्द करने से समस्या सुलझती नहीं। साधना में व्यवधान प्रगति को केवल अवरुद्ध ही करते हैं। तुम्हारा मनोभाव अच्छा हो या न हो, प्रतिदिन प्रात:काल और पुन: सायंकाल, एक घण्टा ध्यान और प्रार्थना में बिताओ। तुम्हारा आध्यात्मिक प्रवाह सदा बना रहना चाहिए। इच्छाशक्ति की सहायता से इसे बनाये रखा जा सकता है; यही नहीं-इसे अवश्य बनाए रखना चाहिए। साधक को प्रतिरोध और अनुरोध करना चाहिए : कुछ समय के लिये साधना बन्द करने की उसकी आन्तरिक प्रेरणा का प्रतिरोध करना चाहिए और उसके नैरन्तर्य को बनाए रखने का अनुरोध करना चाहिए। प्रतिक्रियाएँ और बाधाएँ हमारी इच्छाशक्ति के परीक्षक के रूप में आती हैं। इन पर विजय प्राप्त करने से हमें महान् मानसिक शक्ति प्राप्त होती है।

हमें भगवत्कृपा प्राप्त है, भले ही हम उसका अनुभव न करें। हमें परमात्मा से हमारे प्रयासों और संघर्षों में संरक्षण और मार्गदर्शन के लिये तथा उनके निकट से निकटतर ले जाने के लिये प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना एक महत्त्वपूर्ण साधन है। जब सही तरीके से ध्यान करना सम्भव न हो तो प्रार्थना की जा सकती है। इससे महान् आन्तरिक सान्त्वना प्राप्त होती है और हमारी कठिनाईयाँ शीघ्र दूर हो जाती हैं। छोटी-छोटी गलतियों और स्खलनों की चिन्ता किए बिना साधक को परमात्मा को अपने जीवन का केन्द्र बनाकर आगे बढ़ते रहना चाहिए। ऐसे निष्ठावान् साधकों के लिये असफलताएँ सफलता की सीढ़ियाँ बन जाती हैं। वे बहुत-सी परीक्षाओं से गुजरते हुए अन्त में विजयश्री अर्जित करते हैं।

हमें परमात्मा में अपने विश्वास की भी वृद्धि करनी चाहिए जो, जैसा कि श्रीरामकृष्ण उचित ही कहा करते थे, हमारी ओर दस कदम आता है, यदि हम उसकी ओर एक कदम अग्रसर हों। माँ बच्चों को खेलने देती है, लेकिन जब बच्चा खेल से ऊब कर रोने लगता है और माँ के पास आने लगता है, तो उसे बच्चे की ओर दौड़कर जाना पड़ता है। भगवान् के भक्तों का भी यही हाल है जो अपने दुर्बल मानवी उपायों से भगवान् की ओर जाना चाहते हैं।

कभी तुम्हें निराशा आ सकती है। यह अपरिहार्य है। ऐसे अवसरों पर परमात्मा के साथ आन्तरिक सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न करो, और निराशा के भाव के स्थान पर उच्च भाव आ जाएगा। सदा परमात्मा के साथ आन्तरिक सम्बन्ध बनाए रखने का भरसक प्रयत्न करो। मनोभावों में स्वाभाविक उतार-चढ़ाव हो सकते हैं, लेकिन यदि परमात्मा के संस्पर्श में रहने का प्रयत्न किया जाए तो कुछ उच्च मनोभाव हमारे साथ सदा बना रहेगा। यदि कभी वह विलुप्त होता प्रतीत होवे तो भी चिन्ता मत करो। शान्तिपूर्वक धीरे-धीरे स्वयं को चेतना के उच्च स्तर पर उठाओ तथा सम्पर्क पुन: स्थापित करने का प्रयत्न करो और सब कुछ ठीक हो जाएगा।

कभी-कभी अचेतन और अवचेतन के राज्य में छुपे पड़े संस्कारों के चेतन स्तर पर उभर आने पर मानसिक ही नहीं, बल्कि शारीरिक विक्षेप भी पैदा हो सकते हैं। यह बहुत कष्ट और परेशानी पैदा करता है। लेकिन हमें संतुलन नहीं खोना चाहिए। हमें परिस्थिति जैसी है, उसे उसी रूप में साक्षी भाव अपनाते हुए,

देखना चाहिए। हमें उसमें परमात्मा को देखने का प्रयत्न करना चाहिए; उस समय चिरन्तन माध्यम को अनुभव करने का प्रयत्न करना चाहिए जिसमें सभी संवेदन, सभी स्पंदन एवं सभी विचार अभिव्यक्त हो रहे हैं। और तब परमात्मा मुख्य रूप से सत्य हो जाते हैं और सभी रूप छाया की तरह प्रतीत होने लगते हैं तथा अपना आकर्षण और मनोहरता खो देते हैं। ऐसा होने पर शारीरिक और मानसिक संतुलन पुन: स्थापित हो जाता है। यदि तुम पाओ कि तुम्हारा मन धूमिल हो रहा है तो प्रभु से प्रार्थना और उनका ध्यान करो, यह अनुभव करने का प्रयत्न करो कि तुम्हारी आत्मा-तुम्हारी वास्तविक आत्मा-एक दिव्य स्फुलिंग के समान है जो अनन्त ज्योति का अंश है, और तब उच्चतर मनोभाव पुन: लौट आएगा।

हमें सभी परिस्थितियों में परमात्मा को पकड़े रहना चाहिए। अवसाद की मन:स्थिति में जप बहुत सहायक होता है। भगवान् के नाम का इस तरह उच्चारण करने से कि उसे स्वयं सुना जा सके, बहुत राहत मिलती है। आन्तरिक शून्यता और चंचलता के समय तुम उसे अपने आप गुनगुना सकते हो तथा परमात्मा का चिंतन करने का भी प्रयत्न कर सकते हो। जब साक्षात्कार का आनन्द उपलब्ध नहीं है तब भगवान् के, अपने प्रेमास्पद के, आत्मा की भी परम आत्मा के, चिंतन के आनन्द से ही संतोष करना होगा।

स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों स्तरों के संघर्ष के दौरान हमें यथासम्भव ईश्वरचिंतन करना तथा इस तरह अपवित्र विचारों को दूर करना चाहिए। लेकिन कभी-कभी हमारी कल्पना दूषित हो जाती है तथा अपवित्र चित्र हमारी इच्छा के विरुद्ध बहुत स्पष्ट हो उठते हैं। ऐसी स्थिति में भगवन्नाम के मंत्र का जप तथा भगवान् के रूप की कल्पना का प्रयास करते हुए हमें अशुभ विचारों के साक्षी का द्रष्टा का स्थान लेकर उन विचारों के साथ तादात्म्य हो सकता है तथा वस्तुत: कोई बुरा कार्य न करते हुए भी हम उनसे शारीरिक और मानसिक रूप से प्रभावित हो सकते हैं। लेकिन अधिकाधिक सतर्क होने पर तथा तादात्म्य-राहित्य का अभ्यास करने पर हम उनके प्रकट होने पर भी उन्हें अपने से दूर रख सकते हैं।

जब हमारा ''व्यक्तिगत'' मनोभाव हो तथा हम किसी मानवीय व्यक्तित्व के सम्पर्क में आने के इच्छुक हों तब दैवी व्यक्तित्व हमें बहुत सम्बल प्रदान करता है। जब सागर (जो बुदबुदे और लहर दोनों से अधिक सत्य है) काल्पनिक प्रतीत होता है तब बुदबुदा लहर से महान् सम्बल प्राप्त करता है। लहर के संस्पर्श के माध्यम से बुदबुदा पुन: सागर से अपने सम्बन्ध के प्रति सजग हो जाता है।

लेकिन जब हमारा ''अवैयक्तिक'' मनोभाव हो अथवा अपने इष्ट के साथ सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई होती हो तो हम साक्षी भाव का अभ्यास कर सकते हैं।

जीवन की कठिनाईयों से भागने वाले अपने को दुर्बल बनाते हैं और आध्यात्मिक प्रगति के अधिकारी नहीं रहते। जो लोग भगवान् में भरोसा रखकर अपनी कठिनाईयों का सामना करने का निर्णय करते हैं, वे महान् आन्तरिक शक्तिका अनुभव करते हैं। यदि तुम्हारा भगवत्कृपाप्रवाह के साथ सीधा सम्पर्क हो गया है तथा तुमने भक्ति के पाल भी खोल दिए हैं तो सबके जीवन में अनिवार्य रूप से विद्यमान तूफानों और बवण्डरों के बीच से भी भगवत्कृपा की वायु तुम्हें आगे बढ़ाती रहेगी। यह संसार आखिर एक प्रशिक्षण स्थल ही तो है। वह एक आनन्दवाटिका नहीं है, जैसी कि हम गलत धारणा कर बैठते हैं।

युद्ध के विभिन्न हथियार :

एक वास्तविक अन्तर्मुखी मन हमारे भीतर हो रही घटनाओं की हमें सूचना देता है। हमें पूर्ण सजग तथा हमारे मन में उठ रहे अथवा उठने के इच्छुक प्रत्येक विचार के प्रति पूर्ण सतर्क होना चाहिए। मन को नियन्त्रित किए बिना हम प्रगति नहीं कर सकते और हमारे मन में रही गतिविधियों के प्रति जागरूक हुए बिना हम उसे कभी नियन्त्रित नहीं कर सकते। अत: यह

आध्यात्मिक जीवन के सबसे पहले कदमों में से एक है।

अभी हमारे मन का एक भाग विषयभोग और वैषयिक जीवन चाहता है, जबकि मन का दूसरा भाग उनका और अधिक इच्छुक नहीं है। तुम्हें उन सभी बातों के प्रति वितृष्णा पैदा करने का प्रयत्न करना चाहिए जो इन्द्रियों को आकर्षित करती हों अथवा जो पूर्ण सम्बन्धों और स्मृतियों को जगाती हों। समग्र सांसारिक सुखों के प्रति सच्चे वैराग्य के उदय होते ही सारी समस्याएँ सुलझ जाती हैं। तब एक ऐसी वस्तु का आस्वादन प्राप्त होता है जो विषयों के तथाकथित सुख से- जो वस्तुत: अत्यन्त तुच्छ हैं- मधुर है। यदि तुम्हें ऐसा लगे कि प्रलोभन किसी न किसी रूप में तुम्हें विचलित करने का प्रयत्न कर रहा है तो उन अशुभ विचारों के बुरे परिणामों का अथवा किसी ऐसे महापुरुष का चिंतन करो जो त्याग और पवित्रता की जीवन्त मूर्ति हो। स्वस्थ अभिमान कई बार हमारे आध्यात्मिक प्रयासों में सहायक होता है : ''मैं भगवान का भक्त हूँ; मैं आध्यात्मिक जीवन यापन करना चाहता हूँ, अत: ऐसी मानसिक दुर्बलता मुझे शोभा नहीं देती।'' अपनी इच्छाओं और इन्द्रिय-प्रेरणाओं का शिकार होना सदा ही दुर्बलता और भीरूता का द्योतक है। यदि तुम अपने आप पर नियंत्रण न कर सको तो किसी साथी साधक के पास चले जाओ, मन को दूसरी दिशा में लगाओ और उसके साथ किसी शुभ विषय पर बातचीत करो। अकेले न रहो और इच्छित वस्तु का चिंतन मत करते रहो। इससे समस्या और जटिल हो जाती है और उसके बाद तुम्हारा पैर अवश्य फिसल जाएगा और तुम दु:ख भोगोगे। यदि सम्भव हो तो ऐसी स्थिति में अपने आपको कुछ उदात्त साहित्य पढ़ने और अध्ययन करने के लिये बाध्य करो, भले ही मन ऐसा करना चाहे या नहीं।

प्रारम्भ में ध्यान, अगर ठीक से किया जाए, तो समग्र अवचेतन-मन को मथ देता है और वहाँ छुपी बहुत-सी विभत्स वस्तुएँ अनायास रूप से उभर आती हैं। अत: साधक को कभी भयभीत नहीं होना चाहिए। अन्तर्मुखी मन अत्यधिक संवेदनशील हो जाता है और ऐसे अनुभव जिनके बारे में हमने सोचा था कि उनका मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है, वे मन पर गहरे दाग और रेखाएँ डालते दिखाई देते हैं। ऐसे सभी संस्कारों को पूरी तरह से साफ करना होगा। और ऐसा करने के लिये उनका साहसपूर्वक सामना करना होगा।

इसके साथ ही अपने नैतिक ढाँचे को सुदृढ़ करना होगा। साक्षी-भाव का विकास करने का प्रयत्न करो। अपनी वासनाओं और इच्छाओं तथा बाह्य घटनाओं के साथ अपना तादात्म्य समाप्त कर दो। यदि तुम्हारा मन उन्मत्त की तरह भटकता रहे तो उसे देखते रहो और अपने को उससे विलग करने का प्रयत्न करो। तुम अपनी सभी मानसिक अवस्थाओं के नित्य साक्षी हो। अपने विचारों के साथ कभी तादात्म्य मत करो। प्रारम्भिक साधक के लिये यह बहुत कठिन कदम है, लेकिन एक बार बढ़ाने के बाद सब कुछ अधिकाधिक स्वाभाविक और तनाव रहित हो जाता है।

जप बहुत सहायक है और दिव्य महापुरुष का ध्यान भी। साकार, निराकार सर्वव्यापी परमात्मा का द्वार है। एक दैवी विग्रह से प्रार्थना करो तथा उसकी कल्पना करने का प्रयत्न करो। तब यदि कोई अवांछनीय आकार तुम्हारे मन में उठे तो इष्ट के रूप की सहायता से तुम उसे दूर कर सकोगे। उसे इष्ट के रूप में विलीन कर दो।

स्वयं को वेदान्त का एक जोरदार इन्जेक्शन देना न भूलो। यह बहुत प्रभावशाली होता है। सर्वप्रथम स्वयं की अव्यक्त दिव्यता का चिंतन करो और उसके बाद अन्य सभी रूपों की-यहाँ तक कि उन रूपों को भी जो तुम्हारे लिये समस्या पैदा करते हैं- दिव्यता का चिंतन करो। यदि हम स्वरूपत: शुद्ध और पवित्र हैं तो हमें इसे इसी जीवन में, केवल मानसिक रूप से ही नहीं बल्कि शारीरिक रूप से भी अभिव्यक्त करना चाहिए। सभी आध्यात्मिक संघर्षों की यही सच्ची कसौटी है। शारीरिक और मानसिक, दोनों ही स्तरों पर अभिव्यक्ति होनी चाहिए। हमारी साधना को आदर्श और व्यवहार के बीच वांछित सामञ्जस्य स्थापित करने में सहायक होना चाहिए।

आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है- महान् दृढ़ता और एकनिष्ठा। इनकी सहायता से ही सफलता प्राप्त की जा सकती है।

तुम्हें किसी भी अवस्था में, परिवर्तित हो रहे मनोभावों अथवा अपने में उठ रहे बुरे विचारों के लिये अवसन्न या उदास नहीं होना चाहिए। यह स्वाभाविक है। अब, निरंतर साधना द्वारा तुम्हें उच्चतर आध्यात्मिक अनुभूतियों को अपना बनाना है। हमें अतिचेन को चेतन स्तर पर लाना है; अनेक में एक को अनुभव करना है; शारीरिक और मानसिक स्तर पर दैवी ज्ञान, पवित्रता और एकता को अभिव्यक्त करना है। भगवान् में विश्वास रखकर दृढ़तापूर्वक हम यदि आध्यात्मिक पथ का अनुसरण करें तो यह केवल समय सापेक्ष है। स्वामी विवेकानन्द की उत्साहवर्धक लघु कविता को याद करो :

भले ही तुम्हारा सूर्य बादलों में ढक जाए,
आकाश उदास दिखाई दे,
फिर भी धैर्य धरो कुछ हे वीर हृदय!
तुम्हारी विजय अवश्यम्भावी है।
शीत से पहले ही ग्रीष्म आ गया,
लहर का दबाव ही उसे उभारता है।
धूप-छाँह का खेल चलने दो
और अटल रहो, वीर बनो।

सबसे सुन्दर

एक बार एक व्यक्ति के मन में सवाल उठा कि सर्वोत्तम सौंदर्य क्या है? वह उत्तर की खोज में चल पड़ा। उसने एक तपस्वी के सामने अपनी जिज्ञासा रखी। तपस्वी बोले-''श्रद्धा ही सबसे सुन्दर है, जो मिट्टी को भी ईश्वर में परिवर्तित कर देती है।''

जिज्ञासु तपस्वी की बात से संतुष्ट नहीं हुआ और आगे बढ़ गया। उसे एक प्रेमी मिला जिसने कहा-''इस दुनिया में सर्वोत्तम सौंदर्य सिर्फ प्रेम है। प्रेम के बल पर इंसान दुनिया की बड़ी से बड़ी ताकत को पराजित कर सकता है।''

उस जिज्ञासु को इससे भी संतुष्टि नहीं हुई। उस समय एक योद्धा रक्तरंजित, हताश लौट रहा था। उस व्यक्ति ने योद्धा से पूछा तो योद्धा बोला-''शक्ति ही सबसे सर्वोत्तम है, क्योंकि युद्ध की विनाशलीला मैं स्वयं देखकर आया हूँ। मैंने देखा कि किस कदर ईर्ष्या और लोभ के वशीभूत लड़ा गया युद्ध अनेक जिन्दगियाँ बर्बाद कर देता है।''

तभी एक स्त्री विलाप करती हुई नजर आई। उस व्यक्ति ने उस स्त्री से इसका कारण जानना चाहा तो वह बोली-''मेरी बेटी खेलते-खेलते जाने कहाँ चली गई है। मैं उसे ढूँढ़ रही हूँ।''

तभी स्त्री की पुत्री खेलते-खेलते वापस पहुँच गई। स्त्री ने उसे बाहों में भर लिया। युवक ने उससे भी वही प्रश्न किया। स्त्री बोली-''मेरी नजर में तो ममता में ही सर्वोत्तम सौंदर्य छिपा हुआ है।''

स्त्री की बातों से उस व्यक्ति को अपने घर की याद आ गई। उसे अहसास हुआ कि पिछले कई दिनों से वह अपने घर से बाहर है। वह घर के लिये चल पड़ा। घर पहुँचने पर उसकी पत्नी और उसके बच्चे उससे लिपट गए। उन्हें देखकर उसे असीम शान्ति की प्राप्ति हुई। उसे लगा कि उसका परिवार ही सर्वोत्तम सौंदर्य है। लेकिन फिर उसने सोचा कि वास्तव में सर्वोत्तम सौंदर्य के प्रत्येक व्यक्ति के लिये अलग-अलग अर्थ हैं और जिसके पास उनमें से जो अर्थ मौजूद है उसकी नजर में वही सबसे महत्त्वपूर्ण है।

गतांक से आगे

शक्ति तत्त्व और पूजा पद्धति

– *स्वामी सारदानन्द*

अंगहीन अथवा विधि और श्रद्धा-रहित होने से पूजा का संपूर्ण फल मिलना असम्भव है, बल्कि कभी-कभी विपरीत फल भी होता है। जिस पूजा में जैसे उपकरण की आवश्यकता है, वह परिश्रमसाध्य होने पर भी जुटा लेना होता है। जिन कारणों के संयोग से जिस विशेष फल की उपलब्धि होती है उन सभी का एकत्र संयोग होना आवश्यक है। यह बात बहुत ही सरल होने पर भी लोग प्राय: इसे भूल जाते हैं। अपने देश में इस बात को हम लोग एकदम भूल बैठे हैं। फल भी वैसा ही हो रहा है। हमारा समस्त देश शक्तिपूजा के आडम्बर में मत्त रहकर भी बलहीन, धर्महीन, विद्याहीन, धनहीन, अन्नहीन और श्रीहीन हो रहा है। दोष है- पूजाविधि का उल्लंघन। रसायनविज्ञान में पारंगत होने के लिये यदि कोई त्रिसन्ध्या-स्नान, हविष्यान्न-भोजन और निर्जन में बीजमंत्र का जप करता रहे तो उसके फल की आशा कहाँ? उसकी इष्ट-शक्ति की उपासना तो अंगहीन है। महामारी के प्रतिकार के उद्देश्य से यदि कोई बाह्य स्वच्छता के विधानों के प्रति संपूर्ण उपेक्षा दिखाकर, खाने-पीने का विचार न रखकर केवल कुछ घण्टे जोरों से हरिकीर्तन करता है तो उसकी चेष्टा पागलपन के अतिरिक्त और क्या है? उसकी इष्टपूजा में उपकरणों का अत्यन्त अभाव है। दुर्भिक्ष के कराल मुख से देश को मुक्त करने के लिये यदि कोई केवल रक्षाकाली की पूजा करके निश्चिन्त बैठा रहे और नये उपायों से धनागम, अन्नवृद्धि तथा अन्यान्य उपयोगी उपायों के प्रति ध्यान न दो तो उसकी आराधना भी अंगहीन ही कही जाएगी। स्वदेश के कल्याण-साधन के लिये यदि कोई दिन भर स्थान-स्थान पर भाषण देता रहे किन्तु कणमात्र स्वार्थ त्याग करने से मुँह मोड़ ले तो उसकी उपासना क्या फल देगी? लोग कहते हैं, 'जिस विवाह का जो मंत्र है, उसमें उसी का उच्चारण होना चाहिए।' इस प्रकार की श्रद्धाहीन, विधिहीन, मन्त्रहीन और दक्षिणाहीन पूजा करके यदि हम कहें कि पूजा का फल तो नहीं मिला तो दोष किसका है? हाय मानव! सहज बुद्धि का भी तुममें अभाव है। शास्त्र तो तुम्हें बार-बार कह रहे हैं-किसी भी कार्य की सिद्धि के लिये पाँच कारणों की आवश्यकता है –

''अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैव चैवात्र पंचमम्।।''

(गीता, 18/14)

जैसे- उपयुक्त देश, उद्यमशील कर्ता, समस्त इन्द्रियों का प्रयोग, बार-बार चेष्टा और दैव। सहज ज्ञान से भी तुम बार-बार अनुभव कर चुके हो कि एक हाथ से दैव और दूसरे हाथ से पुरुषकार को दृढ़ता के साथ पकड़े रहने से ही गन्तव्य मार्ग में सुगमता से अग्रसर होना सम्भव है। सोचो, भगवान् ने तुम्हें क्यों पुरुषकार के साथ चेष्टा और दैव के प्रति निर्भरशीलता दी है? एक बार सोचकर देखो- भारत के पूर्व-पूर्व ऋषि-मुनियों ने मनोविज्ञान, शरीरविज्ञान, ज्योतिर्विद्या, राजनीति आदि में जो पारदर्शिता प्राप्त की थी, क्या वह केवल मंत्रजप के प्रभाव से या प्रयत्न-रहित होकर केवल दैव के ऊपर निर्भर रहकर की थी? भारत के तान्त्रिक अवधूतों ने जिन धातु-निर्मित औषधियों तथा विष-प्रयोगों से सभी प्रकार के रोग आरोग्य करने के उपायों का आविष्कार किया था उनमें न जाने कितने प्रकार के निर्भीक उद्यम तथा परीक्षण की आवश्यकता हुई होगी। एकाग्र साधकों के अनुराग-भक्ति-युक्त हृदय की शक्तिपूजा के फलस्वरूप ही उनमें से एक-एक का आविष्कार हुआ है। आज किसी को किसी विशिष्ट विषय के प्रति अनुराग-भक्ति से प्रेरित हो हृदय का रक्त सुखाते देखकर तुम आँखें क्यों मूँद लेते हो? बलिदान या स्वार्थ-त्याग का नाम सुनते ही तुम एकदम अचेत क्यों हो जाते हो? किन्तु सुनो, भारत के ऋषिगण कार्य द्वारा दिखाकर अनादिकाल से घोषणा करते

आये हैं-श्रद्धा और भक्ति के साथ धीरता से ठीक उपायों का अवलम्बन करो, सभी कष्ट सहकर, हृदय के रक्त की एक-एक बूँद बहा देने के लिये प्रस्तुत रहकर शक्ति का उद्‌बोधन तथा तर्पण करो, अपना प्रिय जो कुछ है,- यहाँ तक कि अतिप्रिय देह-मन तक-इष्टलाभ के उद्देश्य से देवी के सामने उस सब का बलिदान दे दो; तो देखना तुम्हें नवजीवन प्राप्त होगा, जिस उद्देश्य से तुम पूजा कर रहे हो, वह सिद्ध होगा और तुम्हारी एकनिष्ठ भक्तिपूत साधना से तुम्हारे कुल, जाति और देश का महान् कल्याण साधित होगा; स्वयं धन्य होकर तुम दूसरों को भी धन्य कर सकोगे।

बलिदान या संपूर्ण स्वार्थ-त्याग न करने से शक्तिपूजा असंपूर्ण रहेगी और उसका फल भी वैसा ही होगा। बकरा, भैंस आदि का बलिदान तो अनुकल्प मात्र है। हृदय के रक्त से देवी का तर्पण करना होगा। जिस उद्देश्य से पूजा है उस उद्देश्य के लिये अपना संपूर्ण शरीर-मन उत्सर्ग किये बिना शक्तिपूजा में सिद्धिलाभ करना असम्भव है। वेद का उपदेश है- ''त्यागेनैके अमृतत्वमानशु:''- अर्थात् त्याग ही आत्मज्ञान लाभ करके अमर होने का एकमात्र उपाय है। और केवल आत्मज्ञान ही क्यों, स्वार्थ-सुख का त्याग किये बिना संसार में कोई भी महत् विषय प्राप्त नहीं किया जा सकता। शक्तिपूजा-पद्धति के बलिदान और हवन का एकमात्र लक्ष्य त्याग है। सर्वस्वत्याग करने से अमरत्व-लाभ, विद्या के लिये त्याग करने से विद्या-लाभ, धन के लिये त्याग करने से धन-लाभ, तथा प्रभुत्व के लिये त्याग करने से प्रभुत्व-लाभ होता है। इसी प्रकार अन्यान्य विषयों में भी त्याग या बलि का माहात्म्य नित्य प्रत्यक्ष है। इन सब विषयों को प्राप्त करने का उपाय त्याग है, तथा उनकी रक्षा करने का उपाय भी त्याग ही है, यह तो प्रतिदिन प्रत्यक्ष होता है।

किसी भी उद्देश्य से क्यों न हो, शक्तिपूजा में सिद्धिलाभ करना हो तो वृथा शक्तिक्षय रोकना होगा, समस्त शक्तियों की खान अन्तरस्थ आत्मा के साथ मन को संयुक्त करके वहाँ से शक्ति-आहरण का मार्ग साफ करना होगा। बाद में एकनिष्ठ हो श्रद्धा के साथ दैवी शक्ति का आवाहन, पूजन और आत्म-बलिदान करके महाशक्ति की प्रसन्नता प्राप्त करनी होगी। और तभी देवी वरदा होकर साधक के हृदय-मन में अभिनव और अपूर्व बल का संचार करके उसे अभिलषित ध्येय में संपूर्ण रूप से नियोजित करेंगी और उसी से फलसिद्धि हस्तगत होगी। जो कुछ करना हो, वे ही करेंगी। साधक के हृदय-मन केवल निमित्त मात्र होंगे।

अत: विघ्नोत्सारण, भूतबलि, भूतशुद्धि, न्यास, प्राणायाम आदि पूजा के पूर्व करने योग्य विषयों का उद्देश्य ही है- साधक के वृथा शक्तिक्षय का निवारण किसी भी उपाय से हो, वृथा शक्तिक्षय बन्द होने से ही तुम इच्छित विषय-लाभ की पहली सीढ़ी पर चढ़ सकोगे, अन्तर्निहित परमात्मा के ध्यान से इच्छित विषय-लाभ के लिये जिस शक्ति का प्रयोजन है, वह तुम्हारे भीतर उद्‌बोधित होगी। पूजा, स्वार्थ-त्याग तथा एकनिष्ठ भक्ति से वह शक्ति संचित, घनीभूत होकर मूर्ति-परिग्रह करके प्रकाशित होगी। और अन्त में उस नवीन शक्ति का नियोग करने से अभीष्ट फल हस्तगत होगा। सारे देशों तथा समस्त कालों में सब प्रकार की फलसिद्धि के सम्बन्ध में यही नियम है। शक्तिक्षय-निवारण, आत्मनिहित महाशक्ति का ध्यान और आत्मबलिदान। शंख, घण्टा, धूप, दीप आदि का आयोजन रहे ना रहे, सब प्रकार की शक्तियाँ साधक के अन्तर में ही निहित हैं- यह बात ज्ञात हो या न हो तथा शक्तिविशेष को अपने में प्रकट करने के उपर्युक्त क्रमिक उपाय ज्ञात रहें या अज्ञात, तो भी अभीष्ट विषय के प्रति तीव्र अनुराग और ध्यान ने ही समस्त कालों में समस्त साधकों को पूर्वोक्त क्रम के भीतर से फलसिद्धि प्रदान की है, यह बात थोड़ा चिंतन करने से ही समझ में आ सकती है।

पाश्चात्य दार्शनिकों में बहुतों ने शक्ति को जड़ कहा है। वे जड़परमाणु-पुंज में जड़शक्ति के खेल के अतिरिक्त अन्य कुछ भी देख नहीं सकते। विचित्र बहिर्जगत और उसकी अपेक्षा अधिक विस्मयकारक मनुष्य का अन्तर्जगत्

भी पूर्वोक्त जड़ पिता-माता की जड़लीलाप्रसूत जड़संतान है, यही वे कहते हैं। मन हो, या बुद्धि, या आत्मा- सभी उसी ढंग से उत्पन्न हैं। अन्य श्रेणी के लोग कहते हैं जड़ और चैतन्य के भेद से शक्ति दो प्रकार की है। इन दोनों शक्तियों के संयोग से जड़चेतनात्मक यह सृष्टि बनी है। सूक्ष्म चैतन्यशक्ति अपनी स्थूल जड़भागिनी को सदा ही अपने वश में रखकर नियमित कर रही है।

पाश्चात्यों में दो-चार व्यक्तियों का शक्तिसम्बन्धी ज्ञान भारत के ऋषियों के ज्ञान के निकट आ गया है, किन्तु वह भी अनुमान की सहायता द्वारा लब्ध ज्ञान है, ऋषियों की तरह आत्मानुभूति के फलस्वरूप नहीं। यूरोप और अमेरिका अभी थोड़े ही दिन पहले चार्वाक-मत से कुछ आगे बढ़े हैं। युद्ध-विग्रह, धनागम-कौशल, बहु व्यक्तियों के एकत्र संघटन और एक ही उद्देश्य में नियमन, भौतिक शक्ति के ऊपर आधिपत्य-विस्तार, वैश्य तथा अब तक अस्पृश्य रूप में परिगणित शूद्र की अन्तर्निहित शक्ति के अपूर्व विकास आदि के शिक्षा-स्थल होने पर भी मानसिक और आध्यात्मिक राज्य के उच्चांग शक्ति-विकास में वे दोनों देश अभी अधिक अग्रसर नहीं हो सके हैं। 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी'- विषयासक्त व्यक्ति के लिये जहाँ अन्धकार है, संयमी व्यक्ति वहीं प्रकाश देखते हैं-भारत के ऋषियों का यह पुरातन कथन अभी भी उन देशों के सम्बन्ध में सत्य है। भारत के ऋषियों का वहाँ पूर्णाधिपत्य अभी भी अक्षुण्ण है। इसी कारण भारत के वेद-वेदान्तों की गम्भीर ध्वनि से अभी पाश्चात्य जगत् मोहित और स्तब्ध है।

शक्ति जड़स्वरूप है - यह बात नयी नहीं है। हजारों वर्ष पहले भारत के कपिल आदि ऋषि इस बात का प्रचार कर गये हैं, किन्तु उनके जड़वाद तथा आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिकों के जड़वाद में बहुत अन्तर है। जिस शक्ति ने मनुष्य के हिताहित और कार्याकार्य के विचार की सामर्थ्य रखने वाली बुद्धि को जन्म दिया है, वह उससे भी अधम है- यह बात ऋषिगण स्वप्न में भी नहीं सोच सकते थे। क्या कार्यपदार्थ कारण की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकता है? जो कारण में वर्तमान है, वही कार्य में भी वर्तमान रहता और प्रकट होता है- यह बात केवल ऋषि ही क्यों, सभी मतावलम्बी स्वीकार करते हैं।

यद्यपि भारत के ऋषियों ने यह स्वीकार किया है कि शक्ति स्वाधीन भाव से कार्य नहीं कर सकती, फिर भी चैतन्यमय पुरुष के साथ शक्ति का नित्य संयोग रहने के कारण वे उसे नित्य चैतन्यमयी देखते रहे हैं। उन लोगों ने कहा है- ''कल्पना की सहायता से तुम भले ही शक्तिमान् को पृथक कर लो, पर वस्तुत: उन्हें पृथक् करना कभी सम्भव नहीं है। अग्नि और उसकी दाहिकाशक्ति को कोई पृथक् नहीं कर सकता। अनेक वस्तुओं के भीतर एक अनुसंधान में प्रवृत्त होकर भारत के ऋषि द्वैताद्वैतविवर्जित परमधाम में जा उपस्थित हुए थे। बाह्य और आन्तर जगत् एक ही शक्ति से विकसित है तथा तत्त्वत: उसी शक्ति को शक्तिमान् के साथ उन लोगों ने नित्ययुक्त देखा था। इसी कारण उन लोगों ने कहा था-

''नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।।''

(दुर्गासप्तशती, 1/64)

''मम योनिरप्स्वन्त: समुद्रे।।''

(ऋग्वेद, 10/125/7 - देवीसूक्त)

अर्थात् देवी नित्यस्वरूप हैं, जगत् ही उनकी मूर्ति हैं- वे ही अखिल ब्रह्माण्ड व्याप्त कर विराजमान हैं। जिससे जीव और जगत् निकले हैं, सभी की उत्पत्ति का कारणस्वरूप मैं ही वह शक्ति हूँ जो परब्रह्म में सदा विद्यमान है। इसी कारण देवताओं ने शक्ति की स्तुति करते हुए कहा है -

''या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम:।।''

(दुर्गासप्तशती, 15/19)

अर्थात् जो देवी समस्त भूतों में चैतन्य रूप से व्याप्त हैं, उनके चरणों में बारम्बार प्रणाम है।

चैतन्य के साथ शक्ति का नित्य मिलन सर्वत्र प्रत्यक्ष करके ही विशेष विशेष शतिशाली पदार्थों में तथा

समस्त जगत् में भारत के ऋषियों ने शिव-शिवा की आराधना की थी। अभ्रभेदी पर्वतमाला, सागरवाहिनी नद-नदियाँ, रक्तिम छटा, सन्ध्या का तिमिरावगुण्ठन-सभी उनके निकट उस अनन्त-ब्रह्माण्डप्रसविनी देवी के प्रतीक-स्वरूप होकर उनकी सौम्य से भी सौम्यतर मूर्ति प्रकट करते थे। अमानिशा का दुर्भेद्य अन्धकार, मृत्यु का निष्ठुर चित्र, श्मशान की कठिन उदासीनता, काल की संहारपूर्ण छाया-सभी उस करालवदना देवी के भीतर कोमल-कठोर भावों का एकत्र समावेश दिखाकर उन्हें मोहित करते थे। देवताओं और असुरों के नित्यसंग्राम-स्थान मनुष्य के मन में देवी का विशेष प्रकाश जानकर उन लोगों ने उसकी विशेष आराधना का विधान किया था। पथ प्रदर्शक गुरु में, जगद्विमोहिनी स्त्रीमूर्ति में विद्या, क्षमा, शान्ति, मोहनिद्रा, भ्रांति आदि सात्त्विक और तामसिक गुणों में, संसार की प्रत्येक विशेष गुणयुक्त वस्तु या व्यक्ति में उस अद्वितीया वराभयहस्ता मुण्डमालिनी देवी का आविर्भाव देखकर तथा श्रद्धा के साथ आराधना करके वे लोग स्वयं कृतार्थ हुए थे तथा अन्य मनुष्यों को उन्होंने उसी मार्ग पर चलकर धन्य होने की शिक्षा दी थी।

किस-किस स्थान में शक्ति का क्या-क्या विशेष प्रकाश है और किसका किस भाव से पूजा-विधान है, हम अब इस मीमांसा में प्रवृत्त होंगे। अब यहाँ उपसंहार में केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि हे पाठक, यदि तुम्हें भारत की कुलदेवी, 'दुःस्वप्न नाशिनी' शिवानी की उपासना में पूर्ण रूप से आत्म-बलिदान की प्रत्यक्ष महिमा देखने और अनुभव करने की इच्छा हो तो आओ, एक बार निमीलित नेत्रों से, ध्यान की सहायता से दक्षिणेश्वर की 'पंचवटी' के नीचे चलें और उस कुटीर-निवासी, शक्तिसेवा में विलीन देवमानव, विश्वप्रेमिक श्रीरामकृष्ण के तीर्थस्वरूप चरणप्रान्त में-जिनसे महाशक्तियुक्त दीक्षा पाकर श्रीविवेकानन्द सुदूर अमेरिका और यूरोप में चिरपददलित हिन्दुओं की धर्मध्वजा सगौरव फहराने में समर्थ हुए थे-आकर पलभर के लिये बैठें।

*

सही अवसर

एक दिन एक राजा ने अपने सभी दरबारियों से पूछा-''किसी काम के लिये अवसर का सही समय कैसे जाना जाए?''

किसी ने कहा कि ग्रह-नक्षत्रों की गति जानने वाले किसी ज्ञानी ज्योतिषी से पूछा जाए, तो किसी ने कहा कि अनुभवी बुजुर्गों से पूछकर काम का समय निश्चित करना चाहिए। पर राजा को किसी प्रकार भी संतुष्टि न हुई। तब राजा एक माली के पास गया और उससे वही प्रश्न पूछा। माली कुछ नहीं बोला। वह अपनी झोंपड़ी के सामने क्यारियों में पौधे रोपता रहा।

यह देखकर राजा चुपचाप लौट गया। दूसरे दिन वर्षा होती रही। राजा वहाँ नहीं जा पाया। तीसरे दिन वह माली के पास पहुँचा। अपना प्रश्न दोहरया। माली बोला-''आपके प्रश्न का उत्तर तो मैं उसी दिन दे चुका था, पर आप शायद समझ नहीं पाए।''

तब राजा को समझ आया- जो काम सामने है उसे तभी करना सबसे सही अवसर है। उसी में कार्यरत होने से सब काम समय में पूरे होते हैं।

विवाहित स्त्रियों के कर्तव्य

– स्व. जयदयाल जी गोयन्दका

विवाहित स्त्री के लिये पातिव्रत धर्म के समान कुछ भी नहीं है, इसलिए मनसा, वाचा, कर्मणा, पति के सेवापरायण होना चाहिए। स्त्री के लिये पतिपरायण होना ही मुख्य धर्म है। इसके सिवा सब धर्म गौण हैं। महर्षि मनु ने साफ लिखा है कि स्त्रियों को पति की आज्ञा बिना यज्ञ, व्रत, उपवास आदि कुछ भी न करने चाहिए। स्त्री केवल पति की सेवा-शुश्रूषा से उत्तम गति पाती है एवं स्वर्गलोक में देवता लोग भी उसकी महिमा गाते हैं।

जो स्त्री पति की आज्ञा बिना व्रत, उपवास आदि करती है, वह अपने पति की आयु को हरती है और स्वयं नरक में जाती है।

इसलिए पति की आज्ञा बिना यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत आदि कुछ भी नहीं करना चाहिए, दूसरे लौकिक-कर्मो की तो बात ही क्या है। स्त्री के लिये पति ही तीर्थ है, पति ही व्रत है, पति ही देवता एवं परम पूजनीय गुरु भी पति ही है। ऐसा होते हुए भी जो स्त्रियाँ दूसरे को गुरु बनाती हैं, वे घोर नरक को प्राप्त होती हैं। जो लोग पर-स्त्रियों के गुरु बनते हैं, यानी पर-स्त्रियों को अपनी चेली बनाते हैं, वे ठग हैं। वे इस पाप के कारण घोर दुर्गति को प्राप्त होते हैं। आजकल बहुत से लोग साधु, महंत और भक्तों के वेष में बिना गुरु के मुक्ति नहीं होती, ऐसा भ्रम फैलाकर भोली-भाली स्त्रियों को मुक्ति का झूठा प्रलोभन देकर उनके धन और सतीत्व का हरण करते हैं और घोर नरक के भागी बनते हैं। उन चेली बनाने वाले गुरुओं से माताओं और बहिनों को खूब सावधान रहना चाहिए। ऐसे पुरुषों का मुख देखना भी धर्म नहीं है। मनु आदि शास्त्रकारों ने स्त्रियों की मुक्ति तो केवल पातिव्रत से ही बतलाई है। गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते हैं –

एकइ धर्म एक व्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।।
मन बच कर्म पतिहि सेवकाई। तियहि न यहि सम आन उपाई।।
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत धर्म छाड़ छल गहई।।

''वही स्त्री पतिव्रता है, जो अपने मन से पति का हित-चिंतन करती है, वाणी से सत्य, प्रिय और हित के वचन बोलती है, शरीर से उसकी सेवा एवं आज्ञा-पालन करती है। जो पतिव्रता होती है, वह अपने पति की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी आचरण नहीं करती। वह स्त्री पति सहित उत्तम गति को प्राप्त होती है और उसी को लोग साध्वी कहते हैं।''

स्त्रियों के लिये इस लोक और परलोक में पति ही नित्य सुख देने वाला है।

इसलिए स्त्रियों को किञ्चन्मात्र भी पति के प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिए। जो नारी ऐसा करती है, यानी पति की इच्छा और आज्ञा के विरुद्ध चलती है, उसको इस लोक में निंदा और मरने पर नीच गति की प्राप्ति होती है।

पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई।।

इस प्रकार पति की इच्छा के विरुद्ध चलने वाली की यह गति लिखी है। फिर जो नारी दूसरे पुरुषों के साथ रमण करती है, उसकी घोर दुर्गति होती है, इसमें तो बात ही क्या है।

पति बंचक पर पति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई।।

अत: स्त्रियों को जाग्रत की तो बात ही क्या है, स्वप्न में भी पर-पुरुष का चिंतन नहीं करना चाहिए। वही उत्तम पतिव्रता है, जिसके दिल में ऐसा भाव है-

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।।

अपमान तो अपने पति का कभी नहीं करना चाहिए; क्योंकि जो नारी अपने पति का अपमान करती है, वह परलोक में जाकर महान् दु:खों को भोगती है।

बृद्ध रोगबस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।।
ऐसेहुँ पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।।

साध्वी स्त्रियों को पुरुषों और स्त्रियों के जो सामान्य धर्म बतलाये हैं, उनका भी पालन करना चाहिए। पातिव्रत

धर्म के रहस्य को जानने वाली स्त्रियों को अपने पति से बड़ों-सास, ससुरादि की पति के समान ही सेवा-पूजा और आज्ञापालन करनी चाहिए, क्योंकि वे पति के भी पति हैं। पातिव्रत धर्म के आदर्श स्वरूप सीता-सावित्री आदि ने ऐसा ही किया है। जब सावित्री अपने पति के साथ वन में गईं, तब पति की आज्ञा देने पर भी सास-ससुर की आज्ञा लेकर ही गई थी। श्री सीताजी भी श्री रामचन्द्र जी के साथ माता कौशल्या से आज्ञा, शिक्षा और आशीर्वाद लेकर ही गई थीं।

साध्वी स्त्रियों को उचित है कि अपने लड़के-लड़कियों को आचरण एवं वाणी द्वारा उत्तम शिक्षा दें। माता-पिता जो आचरण करते हैं, बालकों पर उनका विशेष असर पड़ता है। अत: स्त्रियों को झूठ-कपट आदि दुराचार एवं काम-क्रोध आदि दुर्गुणों का सर्वथा त्याग करके उत्तम आचरण करने चाहिए। बालक का दिल कोमल होता है, अत: उसमें ये बातें जम जाती हैं और वह झूठ बोलना, धोखा देना आदि सीख जाता है एवं अत्यन्त भीरू और दीन बन जाता है। बालकों के दिल में वीरता, गम्भीरता उत्पन्न हो, ऐसे ओज और तेज से भरे हुए सच्चे वचनों द्वारा उनको आदेश देना चाहिए। उनमें बुद्धि और ज्ञान की उत्पत्ति के लिये सत्-शास्त्र की शिक्षा देनी चाहिए। बालकों को गाली आदि नहीं देनी चाहिए, क्योंकि गाली देना उनको गाली सिखाना है। अश्लील, गंदे, कड़वे अपशब्दों का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए। सङ्ग का बहुत असर पड़ता है। पशु-पक्षी भी सङ्ग के प्रभाव से सुशिक्षित और कुशिक्षित हो जाते हैं। सुना जाता है कि मण्डन मिश्र के द्वार पर रहने वाले पक्षी भी शास्त्र के वचन बोला करते थे। देखा भी जाता है कि गाली बकने वालों के पास रहने वाले पक्षी भी गाली बका करते हैं। अत: सदा सत्य, प्रिय, सुन्दर और मधुर हितकर वचन ही बहुत प्रेम से, धीमे से, स्वर से और शान्ति से बोलने चाहिए। बालकों के सम्मुख पति के साथ हँसी-मजाक एवं एक शय्या पर सोना-बैठना कभी नहीं चाहिए। जो स्त्रियाँ ऐसा करती हैं, वे अपने बालकों को भी व्यभिचार की शिक्षा देती है।

पर-पुरुष का दर्शन, स्पर्श, एकांतवास एवं उसके चित्र का भी चिंतन नहीं करना चाहिए। लोभ, मोह, शोक, हिंसा, दम्भ, पाखण्ड आदि से सदा बचकर रहना चाहिए और उत्तम गुण एवं आचरणों के लिये गीता, रामायण, भागवत, महाभारत एवं सती-साध्वी स्त्रियों के चरित्र पढ़ने का अभ्यास रखना चाहिए और उनके अनुसार ही बालकों को शिक्षा देनी चाहिए।

बच्चों को खिलाने-पिलाने इत्यादि में भी अच्छी शिक्षा देनी चाहिए। मदालसा ने अपने बालकों को बाल्यावस्था में ही ज्ञान और वैराग्य की शिक्षा देकर उन्हें उच्च श्रेणी के बना दिया था। बच्चे बुरे बालकों एवं बुरे स्त्री-पुरुषों का सङ्ग करके कुशिक्षा ग्रहण न कर लें, इसके लिये माता-पिता को विशेष ध्यान रखना चाहिए। हाथ के बुने स्वदेशी वस्त्र स्वयं पहनने और बालकों को भी पहनाने चाहिए। बच्चों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे उनका प्रेम श्रृङ्गारादि में न होकर ईश्वर और उत्तम शिक्षा आदि में हो।

बालकों को गहने पहनाकर नहीं सजाना चाहिए, इससे स्वास्थ्य की हानि एवं कहीं-कहीं प्राणों का भी जोखम हो जाता है। बल बढ़ाने के लिये व्यायाम और बुद्धि की वृद्धि के लिये विद्या एवं उत्तम शिक्षा देनी चाहिए। थियेटर-सिनेमा आदि देखने का व्यसन और बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, भाँग, गाँजा, सुल्फादि मादक वस्तुओं का सेवन करने की आदत न पड़ जाय, इसके लिये भी माता-पिता को ध्यान रखना चाहिए। लड़की और लड़के के खान-पान, लाड़-प्यार और व्यवहार में भेदभाव नहीं रखना चाहिए। प्राय: स्त्रियाँ खान-पान, लाड़-प्यार और दु:ख-सुख, मरण आदि में भी लड़कों के साथ जैसा व्यवहार करती हैं, लड़कियों के साथ वैसा नहीं करतीं, उनका अपमान करती हैं, जो स्त्रियाँ इस प्रकार अपने ही बालकों में विषमता का व्यवहार करती

हैं, उनसे समता की आशा कैसे की जा सकती है? इस प्रकार की विषमता से इस लोक में अपकीर्ति और परलोक में दुर्गति होती है। अत: बालकों के साथ समता का ही व्यवहार रखना चाहिए।

वेश्या, व्यभिचारिणी, लड़ाई-झगड़ा करने वाली, निर्लज्ज और दुष्टा स्त्रियों का सङ्ग कभी नहीं करना चाहिए; परन्तु उनसे घृणा और द्वेष भी नहीं करना चाहिए। उनके अवगुणों से ही घृणा करनी चाहिए। बड़ों की, दु:खियों की और घर आये हुए अतिथियों की एवं अनाथों की सेवा पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

यज्ञ, दान, तप, सेवा, तीर्थ, व्रत, देवपूजन आदि पति के साथ उसकी आज्ञा के अनुसार उसके संतोष के लिये अनुगामिनी होकर ही करें, स्वतंत्र होकर नहीं। पति का जो इष्ट है, वही स्त्री का भी है। अत: पति के बताये हुये इष्टदेव परमात्मा के नाम का जप और रूप का ध्यान करना चाहिए। स्त्रियों के लिये पति ही गुरु है। यदि पति को ईश्वर की भक्ति अच्छी न लगती हो, तो पिता के घर से प्राप्त हुई शिक्षा के अनुसार भी ईश्वर की भक्ति, बाहरी भजन, सत्सङ्ग, कीर्तन आदि न करके गुप्त रूप से मन में ही करें। भक्ति का मन से ही विशेष सम्बन्ध होने के कारण यह जहाँ तक बन सके, गुप्त रूप से ही करनी चाहिए; क्योंकि गुप्त रूप से की हुई भक्ति विशेष महत्त्व की होती है।

पति जो कुछ भी कहे, उसका अक्षरश: पालन करें; किन्तु जिस आज्ञा के पालन से पति नरक का भागी हो, उसका पालन नहीं करना चाहिए। जैसे पति काम, क्रोध, लोभ, मोहवश चोरी या किसी के साथ व्यभिचार करने, किसी को विष पिलाने, जान से मारने, भ्रूण हत्या, गौहत्या आदि घोर पाप करने के लिये कहे, तो वह नहीं करें। ऐसी आज्ञा का पालन न करने से अपराध भी समझा जाय तो भी पति को नरक से बचाने के लिये उसका पालन नहीं करना चाहिए; जिस काम से पति का परमहित हो, वह काम स्वार्थ छोड़कर करने की सदा चेष्टा करनी चाहिए।

विधवा स्त्रियों की सेवा पर विशेष ध्यान देना चाहिए; क्योंकि अपने धर्म में रहने वाली विधवा स्त्री देवी के समान है। उसकी सेवा-सुश्रूषा करने, उसके साथ प्रेम करने से स्त्री इस लोक में सुख और परलोक में उत्तम गति पाती है। जो स्त्री विधवा को सताती है, वह उसकी हाय से इस लोक में दु:खिया हो जाती है और मरने पर नरक में जाती है।

ऊपर बताये हुये पातिव्रत-धर्म को स्वार्थ छोड़कर पालन करने वाली साध्वी स्त्री इस लोक में परम शान्ति एवं परम आनन्द को प्राप्त होती है और मरने के बाद परम गति को प्राप्त होती है।

✻

किनारे की विवशता, कि वह सागर का अंग भी है और धरती का भी अंग है, फिर भी न वह समुद्र में जा सकता है न धरती को लौट सकता। दोनों के संगम पर संक्रांति रेखा–सा पड़ा है। लहरें उससे पछाड़ खाकर भी तृप्त नहीं होती। किनारा उन्हें कुचलता है मगर लहरें मुक्त हैं। किनारा सागर की मर्यादा है, भूमि की मर्यादा है और आकाश की भी मर्यादा है। किनारा उन सब के बीच विवश होकर बंध गया है लेकिन यह बन्धन भी किनारे का अपना बन्धन है और इसी के कारण वह किनारा कहलाता है।

– पू. तनसिंहजी

विचार-सरिता

(चतुर्चत्वारिंशत लहरी)

– विचारक

मनुष्य स्वभावत: खोजी प्राणी है। वह नए-नए अन्वेषण करता रहता है। वह जिज्ञासाओं का पिटारा है। आदमी अद्‌भुत है। उसने सागर की गहराई को नापा। उसके भीतर के खजाने को खंगाला। धरती की परिधि को नापा। उसके वजन और आकार की जानकारी हासिल की। उसके भीतर के रसायनों व भौतिक सम्पदाओं के बारे में जाना। वनस्पति और उसके औषधीय गुण धर्मों के बारे में परिचय पाया। इतना ही नहीं मनुष्य ने आकाश की ऊँचाइयों तक को छू लिया। आकाश-गंगा में टिमटिमाते तारों, नक्षत्रों, चन्द्र और सूर्य की ऊँचाइयों को जाना। चन्द्र और मंगल ग्रह पर निवास की संभावनाओं की खोज की।

इतना सब कुछ होने के उपरान्त भी दुर्भाग्य इस बात का है कि वह अपने को नहीं जान पाया। अपने आप से बेखबर रहना और दूसरों की खबर रखना, यही जैसे उसकी नीयति बन गई है। उसे इस बात को जानने की फुर्सत ही नहीं कि मैं कौन हूँ, मनुष्य की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि वह अपने आप से बेखबर है। वह इस बारे में सदैव संशय के घेरे में है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण फरमाते हैं कि ''संशयात्मा विनिश्यति'' अर्थात् जो संशय में है उसका विनाश निश्चित है। संशय रहित स्वरूप का अद्वैत ज्ञान ही मुक्ति का हेतु है। उसे यह संशय है कि मैं यह काया-कलेवर हूँ या ज्ञानेन्द्रि-कर्मेद्रि अथवा तो प्राण हूँ। कईयों का यह कहना है कि रक्त धमनियों में दौड़ने वाला रक्त ही मैं हूँ। इन सभी संशयों के घेरे से उभर ही नहीं पाता है कि नया अहंकार पैदा हो जाता है और वह अपने को जाति, वर्ग या आश्रम वाला मान बैठता है। कभी वह अपने को बालक मानता है तो कभी युवक और फिर वृद्ध भी मान लेता है। कभी अपने को गोरा तो कभी काला मान बैठता है।

इन सभी संशयों की निवृत्ति तो तब होगी जब उसे किसी ब्रह्मज्ञानी सद्‌गुरु द्वारा अपनी निजता का उपदेश सुनने को मिलेगा। जब तक उसे निर्भयता की कुंजी हाथ नहीं लगेगी तब तक वह विनाशी देह को ही अपना स्वरूप मानकर सदैव मृत्यु से भयभीत रहेगा। क्योंकि देह मरणोधर्मी है और मरणोधर्मी का संग करेंगे तो नहीं मरने वाले को भी मरने का भय बना रहेगा। व्यक्ति जब तक अपने आप से बेखबर है तभी तक देश और दुनिया की खबर जानने का इच्छुक है। यदि वह अपनी निजता से परिचित हो जाय तो बाहर की दुनिया की जानकारी की आशा ही छूट जाएगी। समस्त ब्रह्माण्डों की जानकारी अपने स्वरूप में समाहित हो जाती है। क्योंकि वहाँ जो कुछ भी है अपनी आत्मा से भिन्न नहीं है। वह ब्रह्मतत्व ही साकार रूप में हमें भासित हो रहा है। गीता का पूरा ज्ञान श्रवण करने के बाद अर्जुन ने कहा-'नष्टो मोह: स्मृतिर्लब्धा' अर्थात् अब मुझे अपने स्वरूप की स्मृति हो गयी है और उसे जानते ही मेरा मोह नष्ट हो गया। मैं, तू, यह, वह का भेद तभी तक, जब तक हम अपने आप में जग नहीं जाते। इस मोह निशा के कारण हमें पता ही नहीं है कि प्रकाश किसे कहते हैं। उस वास्तविक उजाले को जानकर उसमें जग जाने का नाम ही आत्म-स्मृति है। यही हमारा वास्तविक स्वभाव है और यही हमारा वास्तविक धर्म है।

इस मोह की तन्द्रा से तो वह जगा सकता है जो स्वयं जाग चुका है। सोया हुआ व्यक्ति किसी दूसरे को जगाने का माध्यम बन ही नहीं सकता। जगा हुआ व्यक्ति उसके वास्तविक परिचय से परिचित होता है तभी तो उसके नाम की टेर उसके श्रवण-द्वार द्वारा सुनाएगा। तभी तो वह सोया हुआ व्यक्ति झिझक कर जाग जाएगा। ऐसे अपने वास्तविक स्वरूप से चिरपरिचित कोई ब्रह्मवेता महापुरुष जब शिष्य के कानों में तत्वमसि आदि महावाक्यों का श्रवण कराता है और शिष्य जब उसे हृदय में धारण करता है तभी वह सत् स्वरूप से परिचित होकर कह पाता है-'अहंब्रह्मास्मि' उस अनंत आत्मा का उद्‌घोष ही उसे जगा पाएगा।

वेदान्तगत शास्त्रों में एक कथा आती है कि एक शेरनी जंगल में से गुजर रही थी जो गर्भवती थी। उसे अचानक प्रसव-पीड़ा हुई और उसी रास्ते में उसने एक बच्चे को जन्म दिया। प्रसव-पीड़ा से घायल सिंहनी अपने बच्चे को छोड़कर आगे बढ़ गई और अपनी कन्दरा में विश्राम करने लगी। उधर उसी रास्ते से बकरियों का झुण्ड गुजरा जिसका चरवाहा पीछे-पीछे चल रहा था। जब भेड़-बकरियों का झुण्ड आगे निकल चुका तो उस चरवाहे ने देखा कि किसी बकरी का बच्चा जिसे अभी-अभी किसी बकरी ने जन्म दिया है और यहाँ मल से लथपथ पड़ा है। उसने उसकी सफाई की और अपने कन्धे पर लाद कर बकरियों के बाड़े में छोड़ दिया तथा किसी ब्याई हुई बकरी का स्तनपान कराके उसे बड़ा किया। अब उस शेर के बच्चे ने उस चरवाहे के व्यवहार के कारण बकरियों को ही अपना परिवार माना तथा स्वयं को भी बकरा समझ कर उन बकरियों की तरह घास खाए और उन्हीं के बाड़े में कैद रहे।

काफी बड़ा होने पर एक दिन वह शेर का बच्चा अपने समूह के साथ जंगल में चरने को जा रहा था, तभी जंगल का राजा शेर वहाँ आया। शेर को देखकर भेड़ें व बकरियाँ भागी और साथ-साथ वह शेर का बच्चा भी भागने लगा। तभी वनराज की नजर उस अपने ही परिवार के सदस्य पर पड़ी जो शेर होते हुए बकरियों को अपना परिवार मानकर उनके साथ भाग रहा है। वनराज ने उस शेर के बच्चे को रोका और समझाया कि जिसे तुम अपना परिवार मान रहे हो, वह तो तुम्हारा आहार है और तुम स्वयं बकरा नहीं अपितु मेरी तरह शेर हो। पहले-पहले तो उस शेर-शावक को संशय हुआ कि मैं तो बकरा हूँ, शेर कैसे हो सकता हूँ। फिर वनराज के कहने से उसने अपने शरीर की बनावट व मुखाकृति का मिलान किया तो उसका संशय टूटा। तभी वनराज ने कहा-मैं दहाड़ लगाता हूँ जिसे सुनकर तुम भी मेरी तरह दहाड़ो ताकि तुम्हें पूरा भरोसा आ जाएगा कि तुम बकरा नहीं अपितु शेर हो। वनराज की दहाड़ (गर्जना) ने उसके सोये हुए स्वरूप की (शेरपने की) याद दिलाई और वह भी शेर की तरह दहाड़ कर आनंद से भर गया। अब तो वह उछलता कूदता शेर बनकर वनराज के साथ ही स्वच्छंद विचारने लगा। क्योंकि अब उसे निर्भयता जो मिल चुकी थी।

उस शेर शावक की तरह यह जीव भी देह संघात को अपना स्वरूप समझकर, ज्ञानेन्द्रियों को ही अपना परिवार मान रहा है और मन रूपी चरवाहे की हाक में अपने को जीव मानकर देह के साथ अपना जन्म व देह की वृद्धि के साथ अपनी वृद्धि तथा देह के मरण के साथ अपनी मृत्यु मान रहा है। प्रारब्ध रूपी पुण्य उदय होने पर जब इस जीव को ब्रह्मस्वरूप में जगे हुए वनराज रूपी गुरु का सान्निध्य मिलता है और उसकी बात पर विश्वास व श्रद्धा कर लेता है तो सद्गुरु उसे तत्वमसि वेदवाक्य का श्रवण कराते हैं और उस मंत्र का आशय समझकर मनन व निदिध्यासन जब होता है तो वही जीव अब शिव बनकर जन्म-मरण से निर्भय होकर मुक्त व स्वच्छन्द हो जाता है।

इसलिए जब तक प्रारब्ध शेष है, प्राण गतिमान हैं तब तक अविलम्ब उस चेतन स्वरूप में हम जग जावें ताकि इस मरणोधर्मी देह से मुक्ति मिल सके।

चतुष्ट साधन-विवेक, वैराग्य, षट्सम्पति व मुमुक्षता इन चारों साधनों का जो ठीक-ठाक पालन कर चुका है, वह साधक ज्ञान का मुख्य साधन श्रवण का अधिकारी बन पाता है। वेद और गुरु वाक्यों में जिसकी श्रद्धा बलवती हो चुकी है और परमात्मा में अनुराग जिसका जग चुका है ऐसे अधिकारी पुरुष को ही गुरु उसका वास्तविक परिचय कराता है। श्रवणकाल में उस शिष्य की वृति श्रद्धा और विश्वास से भरकर जब एकाग्रता ग्रहण करती है तब वह दिया गया उपदेश शिष्य के हृदय प्रदेश में टिक पाता है। उस वास्तविक उपदेश को सुनने के बाद आत्मानुसंधान के लिये शिष्य को चाहिए कि वह मन ही मन उस उपदेश का मनन करे। मनन का अभिप्राय यहाँ यह है कि -

मनन उसी को कहते हैं, मन से करे विचार।
बैठ एकान्तिक देश में और सोधे सार असार।।
युक्ति बाधक भेद को अरु पुनि करे अभेद।
तिन्हीं कर दूर होत है असम्भावना खेद।।

शिष्य को चाहिये कि उपदेशित ब्रह्मवाक्य की बताई गई युक्तियों के आधार पर मन में खूब मन्थन करे कि इसमें सार क्या है और असार क्या है। जो सार वस्तु है उस पर निश्चय टिका कर अगला साधन निदिध्यासन करे।

निदिध्यासन का अर्थ है-नि=निरंतर, दि=दीर्घकाल तक, धी=बुद्धि में, आसन=बुद्धि में स्थान देना। अर्थात् निदिध्यासन का प्रयोजन यह है कि निरंतर, लम्बे समय तक (जब तक परिपक्वता न आ जाय तब तक) बुद्धि में ऐसा विचार हमेशा रहे कि ''मैं सत् चित् आनंद स्वरूप आत्मा नित्य और शाश्वत हूँ।'' शेष देहादि प्रपञ्च असत्य व विनाशी है। ऐसे अभ्यास का नाम ही निदिध्यासन है। निदिध्यासन के बारे में एक सवैया आया है कि -

निदिध्यासन ताको कहे, जीभ हिलै न होठ।
वृत्ति के प्रवाह में, रती न होवे खोट।।
वृत्ति सजाति यूं उठै, अन्तःकरण मझार।
जैसे फूंबै से छूटै, टूटत नहीं तार।।

निदिध्यासन में साधक की वृत्ति आत्मस्वरूप से जुड़ी रहती है। जब तक वृत्ति में सच्चिदानंद स्वरूप की प्रगाढ़ता आरूढ़ न हो जाए तब तक निरंतर दीर्घकाल तक तैल धारावत वृत्ति अपने स्वरूप में टिकी रहे, उसी का नाम निदिध्यासन है। इस साधन में मुँह से नाम जप की आवश्यकता नहीं बताई गई है। केवल अपने स्वरूप का ध्यान निरंतर बना रहता है। जिस प्रकार चरखे पर सूत कातने वाली बुढ़िया अन्य कार्यों का उपदेश कर रही है, हाथ ऊपर नीचे धागे को लपेटने में क्रियावान हैं परन्तु ध्यान उसका धागे में है कि कहीं धागे में कोई गांठ न आ जाए। जब कभी धागे में कोई अनावश्यक गांठ बन भी जाती है तो वह तत्काल उस गाँठ को ठीक करके पुनः धागा बुनने में लग जाती है। ऐसे ही देह व इन्द्रियों से व्यवहार करते समय भी निदिध्यासन के अभ्यस्त साधक की वृत्ति सदैव अपने आत्मस्वरूप से जुड़ी हुई रहती है।

निदिध्यासन की भी तीन अवस्था कही गई है। 1. प्रारम्भिक अवस्था, 2. मध्यम अवस्था, 3. परिपक्व अवस्था। प्रारम्भिक अवस्था में वृत्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध स्वरूप में लगानी पड़ती है। वह बार-बार वहाँ से उखड़ना चाहती है। पर साधक को चाहिये कि जब तक वृत्ति स्वयं ब्रह्माकार न बन जाय, तब तक उसे जबरन स्वरूप में लगाना चाहिए। यही साधक के लिये हितकर है।

मध्यम अवस्था में जब तक सावधानी रखी जाती है, तब तक तो वृति स्वरूप में लगी रहती है। परन्तु ज्यों ही सावधानी हटी और वृत्ति वापस संसार में रमण करने लग जाती है। कई बार तो साधक को बहुत बाद में पता चलता है कि वृत्ति तो कभी की अपनी जगह से उतर चुकी है।

तीसरी अवस्था जिसे परिपक्व अवस्था कहा गया है। इसमें साधक को वृत्ति पर अंकुश लगाने की आवश्यकता नहीं रहती। उस स्तर पर वृत्ति उतनी अभ्यस्त हो जाती है कि साधक के चाहने पर भी वह स्वरूप का आनंद छोड़ना नहीं चाहती। वह स्वयं ब्रह्माकार बन जाती है। यही निदिध्यासन का उद्देश्य है।

इस प्रकार की स्थिति-प्रज्ञ साधक की दृष्टि में जीव भाव की भ्रांति समाप्त हो जाती है। जीव भाव का बाध होकर जीव-ब्रह्म की एकता सिद्ध हो जाती है। वह अपनी आत्मा को व्यापक ब्रह्म से जुड़ा हुआ महसूस करता है। उसका जीव भाव गलीभूत होकर केवल व्यापक ब्रह्म की ही अनुभूति रहती है। जिस प्रकार सरिता जब सिन्धु में समाहित हो जाती है तो वह स्वयं सागर कहलाती है। उसका नाम व रूप तथा क्रिया सब सागर-रूप हो जाती है वहाँ केवल और केवल सागर के अतिरिक्त कुछ नहीं है। ऐसे ही जिसने निदिध्यासन की परिपक्व अवस्था के माध्यम से जीव भाव को तिरोहित करके केवल अगाध (असीम) स्वरूप में स्थिति पाई है उसी का जीवन सार्थक हुआ है। ऐसे स्थिति-प्रज्ञ महाजनों के चरणों में मेरा हृदय से श्रद्धावत नमन।

ओम् शान्ति! ओम् शान्ति!! ओम् शान्ति!!!

जुझार पृथ्वीराज 'निरवाण'

– स्व. रणधीरसिंह 'निरवाण'

विक्रम संवत् 1638 का कालचक्र तीव्र गति से घूम रहा था। भारतवर्ष की सत्ता मुगल आक्रान्ता अकबर के अधीन होकर सिसक रही थी। सम्राट अकबर बड़ा कुटिल, अतीव महत्त्वाकांक्षी और साम्राज्यवादी लिप्साओं से ग्रसित हो, भारत भूमि को पदाक्रान्त करने को तुला हुआ था। वह भारतवर्ष को अधीन कर एक छत्र राज्य करने का स्वप्न देख रहा था।

प्राचीन खण्डेलावाटी के सुदूर पर्वतीय अँचलों के विस्तृत भू-भाग पर उस समय प्रतापी निरवाण (चहुंआणों) का राज्य सुदीर्घकाल से, वि.सं. 1141 से चला आ रहा था जो अपनी प्रभुसत्ता सम्पन्न वैभव को अक्षुण्य बनाये रखने में समर्थ था।

'सुप्रसिद्ध इतिहासकार एवं मनीषी' वयोवृद्ध ठा. सुरजनसिंह जी शेखावत (झाझड़) के शब्दों में, ***''यह सुनिश्चित है कि जिन 'निरवाणों' ने पाँच सौ वर्षों तक इस क्षेत्र पर अखंडित रूप से शासन किया है– उनका पूर्व इतिहास तो जरूर शानदार रहा ही होगा। पड़ौसी कबीलों जैसे गौड़ों, चन्देलों, तंवरों एवं क्यामखानियों से घिरे रहकर भी इतने सुदीर्घ काल तक अपना अस्तित्व बनाये रखना–कोई साधारण बात नहीं थी। निरवाणों ने उन कुटुम्बों से संघर्षरत रहते हुये ही–इस विशाल भू-भाग पर अपना राज्य कायम बनाए रखा था।''***

अकबर को इन स्वतंत्रताप्रिय एवं स्वाभिमानी निरवाणों से चिढ़ थी क्योंकि इन वीर पुंगवों ने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी और न ही बेटी व्यवहार किया था, इसीलिये उसने इनको नेस्तनाबूद करने का दृढ़ निश्चय कर रखा था। दिल्ली से उसने विशाल सेना को कूच करने का आदेश दिया तथा मार्ग में जो भी ***'किसानों'*** की खड़ी फसलें थीं, उन्हें जलाकर बर्बाद करते हुए और बलात्कार-अपहरण जैसे अमानवीय अत्याचार द्वारा आतंक फैलाया।

जब नीमकाथाना और पचलंगी के समीप मुगल सेना पहुँची तो ***खण्डेला के निरवाणों*** ने इनका प्रतिरोध किया। घमासान युद्ध हुआ। सिरोही स्थान पर महाराज पृथ्वीराज निरवाण ने अपनी घुड़सवार टुकड़ियों से तीव्र वेग से मुगलों की विशाल सेना को परास्त कर भाग जाने को विवश कर दिया। वीर पृथ्वीराज निरवाण का युद्ध करते हुए सिर कट गया, पैर भी कट गये फिर भी घोड़े पर आसीन रहे और दोनों हाथों से तलवारें चलाते रहे तथा असंख्य आतताइयों को मारते हुए वीर गति को प्राप्त होकर 'जुझार' हुए।

उनकी बहिन सूजाबाई घोड़े पर सवार होकर अपने प्रिय भ्राता को पानी पिलाने जब पहुँची तो उनका शव घोड़े से गिरा। यह देखकर सूजाबाई के प्राण पखेरू उस अनन्त में विलीन हो गये जिस प्रकार कि वीर तेजाजी के उत्सर्ग पर उनकी बहिन भी भूमि में समाहित होकर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर बैठी थी। भ्रातृत्व प्रेम की यह एक अनूठी गाथा दृष्टिगत हो उठती है। महाराज पृथ्वीराज और उनकी बहिन सूजाबाई की, दोनों की समाधियाँ सिरोही में अवस्थित हैं तथा जनमानस उनका अर्चन, वन्दन एवं पूजन करता है। इस क्षेत्र के जाखड़ जाट किसानों की रक्षार्थ वीर पृथ्वीराज निरवाण शहीद हुए थे इसलिये जाखड़ विशेष रूप से इन्हें मानते हैं। खाती आदि अन्य भी विशेष रूप से इन्हें मानते हैं। ***चैत्र शुक्ला तीज को मेला (गणगौर) का भरता है।*** दूर-दराज के लोग इन जुझार बाबा को पूजते हैं तथा इनकी मनोती मानते हैं। उन असंख्य वीरों के बलिदान एवं उत्सर्ग स्थल पर कई दूरी में पत्थर ***(खाग)*** गाड दिये गये हैं, जो आज भी विद्यमान हैं, तथा उनकी यशोगाथा को अजर-अमर किये हुए है। मेरे स्व. पिताश्री ठा. कृष्णसिंह निरवाण द्वारा लिखित ***'प्राचीन खण्डेलावाटी की गौरव गाथाएँ एवं यशस्वी निरवाण (चहुंआण)'*** से उद्धृत निम्न दोहा उनकी साक्षी में प्रस्तुत है जो पठनीय है –

''सिर धन जो सौंप ही धरम-धरा ने धाय।
कवि जन तिण कीरत कथै, गीत सुरंगा गाय।।''

प्रतिष्ठा परिवार की?

– पेपसिंह धीरावत ''कल्लावास''

भारत वर्ष विश्व का एक ऐसा निराला व अनोखा देश है जहाँ की प्रकृति व संस्कृति सभी देशों से अनूठी है। यह तपो भूमि, रमो भूमि, सागर नन्दियों, सरोवर, बागान व विभिन्न ऋतुओं की सौगात लिए हुए अपनी अलग पहचान बनाये हुए है।

अनेकों भाषा, बोलियाँ, रीति-रिवाजों, त्योहारों, धर्मों, बाबाओं, मेलों के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ कभी विश्व प्रसिद्ध कुम्भ मेला, तो कभी पुष्कर मेला कभी पशु मेला, तो कभी कवियों के हास्य व्यंग्य के ठहाके सुनने व देखने को मिलते हैं।

यहाँ के हिन्दु रीति-रिवाज श्रावण तीज, गणगौर, चौथ माता, शीतलाष्टमी, रामनवमी, नाग पंचमी, शिव रात्रि, होली, दीवाली आदि अनेकों पर्व प्रति वर्ष धूमधाम से मनाये जाने वाले त्यौहार प्राचीनकाल से चले आ रहे हैं। जिनके पीछे कोई न कोई मूल कारण जुड़ा हुआ है।

हमारे यहाँ स्त्री के पेट में बालक के प्रवेश करते ही संस्कार शुरू हो जाते हैं जो जन्म से लेकर मृत्यु तक चलते हैं। यथा जन्म संस्कार, आठवां पूजन, बाल संस्कार, मुण्डन संस्कार, जनेऊ संस्कार, विवाह संस्कार, मृत्यु संस्कार आदि आदि।

हमारे यहाँ जितना विवाह का महत्त्व है उतना शायद ही दुनिया में अन्यत्र होगा। वर-वधू का नाम, गुण-दोष मिलान, जन्म-पत्री मिलान, तत्पश्चात शुभ मुहूर्त व लग्न से फेरे का विधिवत आयोजन। जिसमें पारंगत पण्डितों द्वारा हवन व पूजन, वर वधू का विवाह, सप्त फेरों के साथ विधि विधान से करवाना। पति व पत्नी द्वारा सात वचनों का पालन कर हवन में आहुति देना, मण्डप के चारों ओर परिक्रमा देना। तत्पश्चात पारिवारिक औपचारिकता व देवी-देवताओं का पूजन आदि बातें समाहित होती हैं। यही कारण है कि विदेशी भी हमारी तपो भूमि में आकर लाखों-करोड़ों रुपये खर्च कर इस विधि द्वारा सात फेरे लेकर आनंदित होते हैं तथा अपने आपको धन्य समझते हैं।

फेरों के समय पति-पत्नी से, पत्नी-पति से वचन लेती है कि हम एक दूसरे का कहना मानेंगे, आदर सम्मान करेंगे, पति व्रत व पत्नी व्रत धर्म निभायेंगे, परिवार की वृद्धि व समृद्धि करेंगे, बुजुर्ग माता-पिता की सेवा सुश्रूषा करेंगे, अतिथि का सम्मान करेंगे, ऐसा कोई कार्य नहीं करेंगे जिससे परिवार के सम्मान व संगठन में चोट आए। फिर सुहागरात के समय दो आत्माएँ समाहित होकर एक हो जाती हैं जो अन्तिम श्वास के पलों तक एक दूसरे का सुख-दुःख में साथ देते हुए अपना फर्ज अदा करते हैं।

वर्तमान समय में इन सब बातों की उपेक्षा होती जा रही है। त्याग, लगाव, अपनापन, भाई-चारा, सहयोग, संवेदना छूटती जा रही है तथा आधुनिकता की दौड़ में नेट, लेपटॉप, चैट, वाट्सअप, इंटाग्राम, मोबाईल ने दशा व दिशा बदल डाली है जिससे मानव एकाकी सूना, असंवेदनशील, शिथिल तथा जीवित लाश बनकर आगे कदम बढ़ाता जा रहा है। कुछ जरूर आर्थिक संपन्नता में अपनी शान शौकत दिखा पा रहे हैं अन्यथा अधिकांश दर-दर ठोकरें खाने को लाचार हो रहे हैं।

कभी परिवार समाज में शान शौकत रखता था आज चौखट पर खड़ा अतीत के सुनहरे किस्सों से आँसू बहाने को लाचार है। विवाह संबंध तीव्र गति से टूट रहे हैं। रिश्तों में दरारें आ रही हैं। दिलों में खटास है तो मनों में ज्वाला भभक रही है, न लड़का परिवार के नियंत्रण में है न लड़की? अच्छे-अच्छे घरों की यह कहानी बन चुकी है।

वर्तमान व भविष्य को संजोये रखना है तो हमें हमारे संस्कारों को बरकरार रखते हुए आधुनिकता से जुड़ाव रखना होगा। क्या कारण है कि विश्व के माने हुए अंबानी ने अपनी सुपुत्री का विवाह राजस्थान के अपने ही समाज के पीरामल के बेटे से किया। क्या यह सीख लेने की बात नहीं है? डूबती इज्जत को बचाने के लिये बड़े भाई व भाभी ने छोटे भाई के करोड़ों हजार रुपयों का भुगतान कर जेल जाने से बचाया? क्या आज हमारे बड़े भाई व भाभी सा ऐसा कदम उठाकर त्याग कर सकते हैं? परिवार की प्रतिष्ठा कायम रखने में सहयोगी बन सकते हैं? प्रतिष्ठा परिवार की बचा सकते हैं?

अपनी बात

अहिंसा दैवी सम्पदा युक्त पुरुष का लक्षण है और भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही इसका महत्त्व समझा जाता रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय व कुछ वर्षों बाद तक अहिंसा चर्चित विषय रहा मगर धीरे-धीरे कुछ सम्प्रदायों को छोड़कर अन्यत्र इसकी चर्चा भी नहीं होती। साधारणतया छानकर पानी पीना, मांसाहार न करना, जैसे नियमों को ही हम लोग अहिंसा मान बैठे हैं। अहिंसा का अर्थ तो दूसरे को दुख पहुँचाने वाली वृति का त्याग समझना चाहिए। हम सबको दूसरे को दुख पहुँचाने में रस आता है। दूसरे को दुखी देखकर हम में सुख का जन्म होता है। कहने को तो हम कहेंगे कि नहीं, ऐसा नहीं है, दूसरे में दुख देखकर हममें सहानुभूति जन्मती है। लेकिन अगर इस सहानुभूति को भी थोड़ा खोजेंगे, तो पाएँगे, उसमें रस है।

किसी के मकान में आग लग गई हो, तब जरा हम हमारा अध्ययन करें। आपने जाकर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की-बहुत बुरा हुआ, ऐसा नहीं होना चाहिए, तब आप अपना निरीक्षण करना कि भीतर कोई रस तो नहीं आ रहा कि अपना मकान नहीं जला, दूसरे का जला है। आज हम सहानुभूति बताने की स्थिति में हैं और तुम सहानुभूति लेने की स्थिति में हो, मौका मिला कि आज हमारा हाथ ऊपर है। यदि वह व्यक्ति सहानुभूति न ले और कहे-अच्छा हुआ, पुराना था और नया बनाना था तो जल गया, गिराने की मेहनत बची। तो आप दुखी लौटेंगे क्योंकि उस व्यक्ति ने आपको ऊपर हाथ रखने का मौका नहीं दिया। आप उस व्यक्ति के दुश्मन बनकर घर लौटेंगे।

दूसरे के दुख में हमें दुख होता है, इसको दूसरे छोर से पहचानता आसान है, दूसरे के सुख में क्या आपको सुख होता है? अगर दूसरे के सुख में सुख होता हो तो ही दूसरे के दुख में दुख हो सकता है। अगर दूसरे के सुख में पीड़ा होती है, तो साफ है कि दूसरे के दुख में आपको सुख होगा, पीड़ा नहीं हो सकती। किसी व्यक्ति या संस्था की प्रशंसा हो रही हो, उस सुख को देखकर आप यदि जलते हैं तो उसका दुख देखकर आप प्रफुल्लित होते होंगे। चाहे आप अपने आप को धोखा दे लेते होंगे, लेकिन भीतर आपको मजा आता होगा। सुबह अखबार उठाकर देखते हैं। अगर कोई उपद्रव न छपा हो, कहीं कोई हत्या न हुई हो, गोली न चली हो, तो थोड़ी देर में अखबार को उदासी के साथ पटक देते हैं। कहते हैं कोई खबर ही नहीं। आप क्या खोज रहे थे? आप कहीं दुख खोज रहे थे, लगता है यही कुछ खबर है।

जब किसी दुखी आदमी को देखते हैं तो तुलनात्मक रूप से हम अनुभव करते हैं कि हम सुखी हैं। नैतिक शिक्षक भी लोगों को समझाते हैं कि तुम्हारा एक पैर टूट गया है तो दुखी मत होओ। देखो, ऐसे लोग भी हैं जिनके देनों पैर टूट गए हैं। आपको लगेगा कि कुछ हर्जा नहीं दुनिया में और भी बुरी हालतें हैं। अपने से ज्यादा दुखी को देखकर सुख का अनुभव होता है। यह संतोष दिलाने को तो कहा जाता है, पर यह कोई भला संदेश नहीं है। दूसरे को दुखी देखकर आप सुखी हो रहे हैं।

अहिंसा का अर्थ है, दूसरे को दुख न पहुँचाने की वृति। यह तभी हो सकता है जब दूसरों के दुख में हमें सुख न हो और यह तभी होगा जब दूसरे के सुख में हमें सुख की भावदशा बनने लगे। दूसरे के सुख को अपना उत्सव बनाएँ। जब कोई दुखी होता है, तो दुख अनुभव करें और दूसरे के दुख में समानुभूति में उतरें। दूसरे की जगह अपने को रखें, चाहे सुख हो, चाहे दुख। दूसरे की जगह स्वयं को रखने की कला अहिंसा है। यह भावदशा आ जाए तो मांसाहार आदि छूटना अपने आप घट जाएँगी।

अहिंसा लक्षण है इस अर्थ में कि आप अपने मन से दूसरे को दुख देने का भाव विसर्जित कर दें। शुरू करना होगा दूसरे के सुख में सुख लेना। क्योंकि सुख लेना आसान है, दुख लेना कठिन है। अपना ही दुख

झेलना मुश्किल होता है, दूसरे का दुख झेलना तो और मुश्किल हो जाएगा। आप अपने ही दुख से काफी परेशान हैं, अगर हर एक दुख लेने लगें और हर एक का दुख झेलने लगें; हर घर में आदमी मरेगा, अगर आप हर घर में बैठकर रोने लगें, जैसे आपका ही कोई मर गया हो- यह कठिन होगा। इससे शुरुआत नहीं हो सकती।

इसलिए शुरुआत का सूत्र है, दूसरे के सुख से शुरू करें। जब दूसरे के जीवन में फूल खिले, तो आपके जीवन में नाच आए। यह आसान होगा। हालांकि कठिन लगेगा, क्योंकि अभी हमें सुख देखकर तो बड़ी पीड़ा होती है। साधना दुरूह है। वह ऊँचे पहाड़ चढने जैसा प्रयोग है। यह ऊँचे से ऊँचा पहाड़ है, दूसरे के सुख में सुख अनुभव करना, पर आपका जीवन उत्सव से भर जाएगा, प्रकाश से भर जाएगा।

तब दूसरा प्रयोग है, दूसरे के दुख में अनुभव करना, तब आपके जीवन में अंधकार भी भर जाएगा। प्रकाश और अंधकार दोनों। क्योंकि दूसरों के दुख में आप दुखी हो रहे हैं और दूसरों के सुख में आप सुखी हो रहे हैं, आपका साक्षी-भाव दोनों में निर्मित हो सकेगा। आप दोनों अनुभवों में डूबकर भी बाहर रह सकेंगे। जब आपका खुद का दुख आता है, तो आप एक दम भीतर हो जाते हैं, आप दुख में लीन हो जाते हैं। जब आप दूसरे के दुख में डूबेंगे, तो आप कितने ही लीन हो जाएँ, आपका आंतरिक आत्यंतिक हिस्सा बाहर खड़ा देखता रहेगा। जब आप पर सुख आता है, तो आप उसमें उत्तेजित हो जाते हैं। दूसरे के सुख में आप कितने ही डूबें, उत्तेजित न हो पाएंगे। वह एक धीमा, सौम्य उत्सव होगा, और आपके भीतर का साक्षी-भाव जगा रहेगा।

ध्यान रहे, जो व्यक्ति दूसरे के सुख-दुख में साक्षी हो गया, वह धीरे-धीरे अपने सुख-दुख में भी साक्षी हो सकेगा। क्योंकि थोड़े ही समय में उसे पता चलेगा, सुख-दुख न तो मेरे हैं, न दूसरे के हैं। सुख-दुख घटनाएँ हैं, जिनका मेरे और तेरे से कोई लेना-देना नहीं है। सुख-दुख बाहर परिधि पर घटते हुए धूप-छाया के खेल हैं, जो मेरे आंतरिक केन्द्र को छूते भी नहीं, जिनसे मैं अस्पर्शित रह जाता हूँ। अहिंसा के इस वास्तविक स्वरूप को अपनाएँ और साक्षी-भाव जगावें।

✲

- : शिविर सूचना :-

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं-

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि	
1.	मिलन शिविर	07.06.2019 10.06.2019	बाड़मेर	- भारतीय ग्राम्य आलोकायन ट्रस्ट द्वारा संचालित आलोक आश्रम, गेहूं रोड़, बाड़मेर शिविर स्थान होगा। - आमंत्रित स्वयंसेवक ही आ सकेंगे। - आमंत्रित स्वयंसेवक पूरा शिविर न कर सकें तो कम-से-कम दो दिन के लिये आ सकते हैं।

दीपसिंह बेण्यांकाबास
शिविर कार्यालय प्रमुख
श्री क्षत्रिय युवक संघ

मातृभूमि की
स्वाधीनता के लिए
अपना पूरा जीवन
बलिदान कर देने वाले
वीर शिरोमणि

महाराणा प्रताप

की जयंती पर उनके चरणों में शत्-शत् नमन

IAS / RAS

तैयारी करने का राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

स्प्रिंग बोर्ड

Spring Board

Springboard Academy, Main Riddi Siddi Choraha,
Opposite Bank of Baroda, Gopalpura, Bypass Jaipur

Website : www.springboardindia.org

हुकुम सिंह कुम्पावत (आकडावास, पाली)

शिव ज्वैलर्स

विश्वसनीयता में एक मात्र नाम

22/22 कैरेट हॉलमार्क आभूषण,
न्यूनतम बनवाई दर पर

शुद्ध राजपूती आभूषण (बाजूबन्द, पूछी, बंगडी, नथ आदि)
तैयार उपलब्ध एवं ऑर्डर से भी तैयार किये जाते है।

विशेषज्ञ :- सोने व चाँदी की पायजेब, अंगूठी, डायमण्ड, कुन्दन के आभूषण, बैंकॉक आईटम्स आदि

जी-1, सफायर कॉम्पलेक्स, जैन मेडिकल के सामने,
खातीपुरा रोड़, झोटवाड़ा, जयपुर
मो. 7073186603, 8890942548

जून, सन् 2019
वर्ष : 56, अंक : 06

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह